घीसा पन्थ : एक अवलोकन

एक अवलोकन

इन्द्र सेंगर

स्वागत

श्री इन्द्र सेंगर ने अपनी इस शोधपूर्ण कृति मे 'घीसा-पन्थ' के प्रवर्त्तक सन्त घीसा साहब और उनके अनुयायियो के भक्ति काव्य पर विशद प्रकाश डालकर तत्कालीन सामाजिक, राजनीतिक तथा सास्कृतिक परिस्थितियो का यथातथ्य आकलन किया है। लेखक ने भारत के विभिन्न धार्मिक सम्प्रदायो और उनके प्रवर्त्तको के जीवन के अन्त.साक्ष्य और बहि साक्ष्य के आधार पर तत्कालीन धार्मिक मतो और सम्प्रदायो के स्वरूप का भी अच्छा चित्रण किया है।

जिन परिस्थितियो मे सन्त घीसा साहब ने अपने क्रान्तिकारी विचारो के माध्यम से समाज मे नवजागरण का मन्त्र फूंका था उनकी सही झांकी प्रस्तुत करने मे लेखक को इसमे पूर्ण सफलता मिली है। सन्त घीसा साहब के अनुयायियो ने उनके व्यक्तित्व तथा कृतित्व से अनेक शिक्षाएँ ग्रहण करके समाज मे फैली हुई भ्रान्तियो का निराकरण करने मे अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका प्रस्थापित की थी। आध्यात्मिक साधना के क्षेत्र मे सन्त घीसा साहब और उनके अनुयायियो के द्वारा पश्चिमी उत्तर प्रदेश और हरियाणा म किसी समय बहुत बडा कार्य हुआ था।

हिन्दी के भक्ति-साहित्य म सन्त घीसा साहब और उनके अनुयायियो के विचारो तथा कार्यों का जो महत्त्व है उसका सम्यक् परिशीलन इस विश्लेषणपरक कृति मे किया गया है। अध्यात्म तथा व्यवहार दोनो ही दृष्टि से इस पन्थ के सन्तों की वाणियाँ समाज को एक नई दिशा देने वाली हैं। इनमे पाठको को जहाँ कबीर-जैसा फक्कडपन दृष्टिगत होगा वहाँ तुलसी-जैसी भक्ति-भावना भी प्रचुर मात्रा मे परिलक्षित होगी। वास्तव म भक्ति-साहित्य के क्षेत्र मे इस प्रकार के सुधारवादी सन्तो की वाणियो का अपना सर्वथा विशिष्ट महत्त्व होता है।

श्री सेंगर ने इस कृति मे जहाँ सन्त घीसा साहब और उनके पन्थ की विविध विशेषताओ का वर्णन अत्यन्त तत्परतापूर्वक किया है वहाँ उनके अनुयायियो की वाणियो की बानगी भी इसमे प्रस्तुत कर दी है। हमारे पाठक सन्त घीसा साहब और उनके अनुगामी अन्य सन्तो की इन वाणियो में तत्कालीन सामाजिक परिस्थितियों का अच्छा निदर्शन प्राप्त कर सकेंगे।

लेखक का विश्लेषण तथ्यपरक और वास्तविकता के अत्यन्त निकट होने के कारण और भी अधिक उपादेय एवं ग्राह्य हो गया है। मैं इस कृति का स्वागत करते हुए श्री इन्द्र सेंगर की साहित्य शोध यात्रा के प्रति पूर्ण आशान्वित हूँ। मुझे यह पूर्ण विश्वास है कि अध्यात्म प्रेमी पाठक इसे आत्मीयता से अपनायेंगे।

अजय निवास, दिलशाद कालोनी
शाहदरा, दिल्ली-३२

—क्षेमचन्द्र 'सुमन'

निवेदन

हिन्दी-साहित्य की निर्गुण सन्त परम्परा पर जिन अनेक मनीषियो ने शोधपरक कार्य किया है उनमे डॉ० पीताम्बरदत्त बडथ्वाल, आचार्य क्षितिमोहन सेन, आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी, डॉ० श्यामसुन्दरदास, श्री परशुराम चतुर्वेदी और श्री वियोगी हरि प्रभृति विद्वानो के नाम विशिष्टरूपेण उल्लेखनीय हैं। इन सभी विद्वानो ने इस परम्परा के प्रति पूर्ण समर्पण की भावना से कार्य किया है और अपनी कृतियो मे अधिकतम जानकारी देने का प्रयास किया है। इतना होने पर भी 'घीसापन्थी' सन्त कवियो का साहित्य उक्त विद्वानो की दृष्टि से कैसे ओझल रह गया, यह एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न है ? इतना ही नही इसके अतिरिक्त भी अन्य कई सन्त कवि ऐसे हैं जो साहित्य लेखन के क्षेत्र मे अभी तक अछूते हैं, जिनका उल्लेख मैं अपने शोधग्रन्थ 'भारतेन्दु पूर्व खडी बोली की कविता' मे यथासमय करूँगा।

'घीसा पन्थ' का प्रवर्तन निर्गुण सन्त परम्परा के सन्त कवि घीसा साहब ने सन् १८३० ई० मे किया था। आपने उन्नीसवी शताब्दी के प्रारम्भ मे सांस्कृतिक क्रान्ति का शखनाद करके सन्त कबीर की स्मृति को पुन जाग्रत कर दिया था। इसका सुपरिणाम यह हुआ कि घीसा पन्थ भारतवर्ष के प्रत्येक प्रान्त में छा गया। परन्तु आश्चर्य की बात है कि जिस पन्थ की सम्पूर्ण भारत मे लगभग दो सौ गद्दियाँ हो, जिन पर वर्ष भर मे कई पर्व मनाये जाते हो, वह पन्थ अन्वेषकों की दृष्टि से कैसे ओझल रह गया ? परमसन्त दर्शनसिंह से अध्यात्म विद्या का ज्ञान प्राप्त करने के फलस्वरूप मेरी रुचि सन्त साहित्य की ओर अग्रसर होती गई और कुछ वर्ष के उपरान्त मुझे घीसापन्थ की प्रथम किरण मिली। वह किरण मेरे मानस मे बैठ गई और मेरे मन-पटल पर ज्ञान की चादर की नाईं पसर गई। गत पाँच वर्षों से मेरा मन बारम्बार इस पन्थ पर एक ग्रन्थ लिखने के लिए उद्वेलित होता रहा और एक दिन वह आया कि मैं सन्त आश्रम माहरी, जिला सोनीपत के द्वितीय अध्यक्ष श्री समन्दरदास के पास इस विषय में साक्षात्कार के निमित्त पहुँच गया। उनकी उदारता ने मुझे इस पन्थ के गहन-

तम अध्ययन की ओर प्रेरित करके तत्सम्बन्धी सामग्री भी प्रदान की। तब से मेरा मन और बेचैन हो उठा। मैं निरन्तर लेखन मे जुट गया।

ग्रन्थ लगभग एक वर्ष मे पूर्ण हो गया था, परन्तु इसमे कुछ ऐसी छोटी-छोटी शकाएँ अवशेष रह गई थी, जिनके निरसन के लिए मैंने सतगुरु घीसामन्त दरबार खेकडा, जिला मेरठ मे जाना समीचीन समझा। वहाँ उक्त आश्रम की सरक्षिका श्रीमती माई सुशीला देवी स पर्याप्त जानकारी प्राप्त हुई और वहाँ सन्त ईश्वर-दास की वाणियो का एक प्रकाशित ग्रन्थ भी गुरुमुखी लिपि मे प्राप्त हुआ। फिर क्या था, मेरी आशा की कलियाँ चटकने लगी। इतना ही नही, इस पन्थ की विशिष्ट एव शोधपरक जानकारी प्राप्त करने के लिए मैंने तत्सम्बधी लगभग सभी सन्त आश्रमो की पावन तीर्थयात्रा करके और भी अधिकतम प्रामाणिक सामग्री प्रस्तुत करने का प्रयास किया। इस साहित्यिक अनुष्ठान मे मुझे जिन अन्य विद्वानो का सहयोग मिला उनम साध्वी वसन्तावरी माई, स्वामी आत्मप्रकाश, आचार्य जगदीश मुनि, श्री रघुवरदयाल शास्त्री, श्री धर्मवीर कौशिक, श्रीमती सौभाग्य-वती गुप्ता, डॉ० रफीक अहमद, श्री विक्रम सेंगर 'अशुमाली', श्री पुरुषोत्तम सारडा, श्री बी० एम० अग्रवाल तथा श्री बी० एल० मित्तल प्रभृति के नाम विशेष उल्लेखनीय है। एतदर्थ मैं इन सबका हृदय से आभारी हूँ।

हिन्दी-जगत् के मूर्धन्य साहित्यकार आचार्य क्षेमचन्द्र 'सुमन' और डॉ० एल० बी० राम 'अनन्त' का मैं चिरकृतज्ञ हूँ जिनकी छाया मे रहकर मैं आलो-चनात्मक लेखो की ओर अग्रसर हुआ। इस पुस्तक के प्रकाशन से पूर्व ही 'घीसापन्थ' से सम्बन्धित मेरे और अनेक लेख हिन्दी की 'ज्योत्स्ना', 'वीणा' और 'परिषद् पत्रिका-जैसी उत्कृष्ट पत्रिकाओ मे भी प्रकाशित हुए थे, उनका हिन्दी-जगत् मे पर्याप्त स्वागत भी हुआ। इतना ही नही सुमनजी ने अपना अमूल्य समय निकालकर इस पुस्तक की भूमिका लिखकर मुझ पर जो अनन्य स्नेह लुटाया है उसके लिए मैं उनका चिरऋणी हूँ। साथ ही प्रोफेसर श्रीरजन सूरिदेव ने इस ग्रन्थ के लिए अपनी सम्मति प्रेषित करके जिस उदारता एव बन्धुत्व का परिचय दिया है उसके लिए मैं हृदय से उनका आभार व्यक्त करता हूँ। इस ग्रन्थ में उपयोगार्थ जो जीर्ण-शीण छाया-चित्र मुझे उपलब्ध हुए थे, उन छाया-चित्रो की सहायता से मोहन फोटो स्टुडियो, कृष्णनगर, दिल्ली-५१ ने नवीन छायाचित्र तैयार करके जो अन्यतम सहयोग दिया है उसके लिए वे भी साधुवाद के पात्र हैं। इस सहयोग मे प्रिय भाई विजय 'सुमन' भी धन्यवाद के पात्र हैं।

यहाँ मैं एक स्पष्टीकरण भी आवश्यक समझता हूँ, वह यह है कि घीसापन्थ-आश्रमो के साम्पत्तिक वाद-विवाद मे वैधानिक साक्ष्य के लिए लेखक का कोई उत्तरदायित्व नही है। इस ग्रन्थ मे प्रयुक्त सभी तथ्य उक्त पन्थ के अनेक आश्रमो मे कार्य-रत महन्तो के साक्षात्कार पर ही आधृत हैं।

अन्त मे विज्ञ पाठको एव दार्शनिक अध्येताओ से अनुरोध है कि मैंने इस पुस्तक मे घीसापन्थ के दर्शन पर विशद रूप से प्रकाश नही डाला है। इसका मूल कारण यह है कि मैंने अपने शोध ग्रन्थ 'भारतेन्दु पूर्व खडी बोली की कविता' मे इस विषय पर सविस्तार विवेचन किया है, जिसका आस्वाद आपको शोध-ग्रन्थ के प्रकाशनोपरान्त अवश्य मिलेगा, ऐसा मेरा विश्वास है। साथ ही मेरा घीसा पन्थ के विद्वानो एव सुधी पाठको मे निवेदन है कि यदि वे इस पुस्तक मे किसी प्रकार की असगति का अवलोकन करें तो उससे अवगत कराने की कृपा करें जिससे आगामी सस्करण मे उसका निराकरण किया जा सके।

३०/१०६, पचशील गली न० ७
विश्वास नगर, शाहदरा, दिल्ली-३२

—इन्द्र सँगर

घीसा पन्थ के प्रवर्त्तक
सन्त घीसा साहब
की पावन स्मृति को
सादर समर्पित

घीसा पन्थ के प्रवर्त्तक
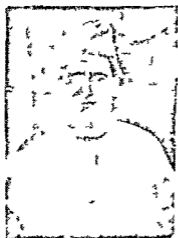
सन्त घीसा साहब

सन्त घीसा साहब के अनन्य शिष्य

सन्त जीतादास
(पृष्ठ ४२)

सन्त नेकीराम
(पृष्ठ ६०)
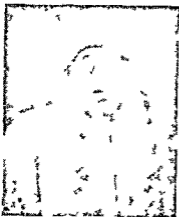
सन्त द्योतरामदास
(पृष्ठ ७२)

सन्त ईश्वरदास
(पृष्ठ ७४)
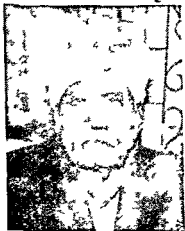
महात्मा हीरादास
(पृष्ठ ७७)
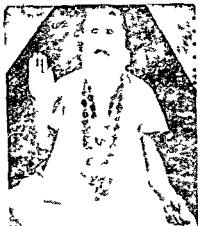
सन्त योगानन्द
(पृष्ठ ७८)

सन्त अवगतदास
(पृष्ठ ७८)
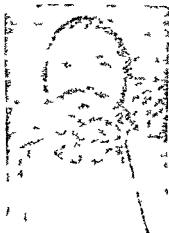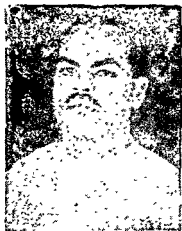
महन्त अचलदास
(पृष्ठ ८१)

सन्त मंगतदास
(पृष्ठ ८१)

अवधूत शिरोमणि चन्दनदेव
(पृष्ठ ८३)

महन्त श्री समन्दरदास
(पृष्ठ ८४)
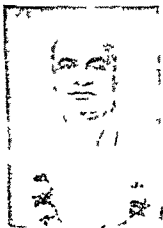
स्वामी आत्म प्रकाश
(पृष्ठ ८५)

आचार्य जगदीश मुनि
(पृष्ठ ८५)

श्री धर्मवीर कौशिक
(पृष्ठ ८७)

श्रीमती सौभाग्यवती देवी गुप्ता
(पृष्ठ ८७)

क्रम

१. पृष्ठभूमि ६
२ उद्गम एव विकास १४
३ सन्त घीसा साहब जीवन-वृत्त एव विचार-धारा २६
४ सन्त जीतादास : जीवन-वृत्त एव विचार-धारा ४२
५ सन्त नेकीराम · जीवन-वृत्त एव विचार-धारा ६०
६ विविध ७२
७ सन्त-वाणियाँ ८६
८ सहायक ग्रन्थ ११८

१

पृष्ठभूमि

भारत मे मुगल-साम्राज्य का उत्थान तथा पतन सूर्य की दैनिक गति की भाँति ही हुआ है। बाबर का शासन-काल इस वश के सूर्योदय का काल था। हुमायूँ का शासन-काल सूर्य-ग्रहण का काल था जबकि सूरवशी राहु ने मुगलवशी सूर्य को ग्रसकर उसे सर्वथा अन्धकार मे डाल दिया था। इसी प्रकार अकबर के शासन-काल को हम मुगलवशी प्रभाकर का चरमोन्नति काल कह सकते हैं। वह मुगल-वश के शासन की शीत ऋतु का मध्याह्न था, जबकि अकबर की उदार, दयालु तथा सुलहकुल की नीति के कारण मुगल-राजवश का तेज सबके लिए आनन्दकर था। जहाँगीर के शासन काल से ही मुगल राजवश का प्रभाकर अस्ताचल की ओर चल पड़ा था और उसके तेज तथा उसके प्रकाश का ह्रास आरम्भ हो गया था। जहाँगीर ने अपने पिता की उदार तथा सहिष्णुता की नीति को त्यागकर जिस अनुदार तथा असहिष्णुता की नीति का बीजारोपण किया था अन्ततोगत्वा वह मुगल साम्राज्य के लिए बड़ी घातक सिद्ध हुई। उसके शासन काल मे जो विद्रोह, गुटबन्दी तथा अत्याचार हुए उन्होने मुगल राजवश की गौरव-गरिमा को सर्वथा ध्वस्त कर दिया था। इसी प्रकार शाहजहाँ का काल मुगल-वश के अवसान का काल था। औरगजेब के काल को हम मुगल वैभव के अवसान का काल कह सकते हैं। उसकी कट्टरता तथा धर्मान्धता की नीति ने सारे वातावरण को विषाक्त कर दिया था। यही कारण है कि उसके निधन के पश्चात् मुगल-वश का सूर्य सर्वथा अस्त हो गया था।

उत्तर भारत मे मरहठो का उत्कर्ष विदेशी आक्रमण की शृखला से उत्पन्न आतक, १७६१ ई० मे अहमदशाह अब्दाली द्वारा मरहठों की पराजय इत्यादि की घटनाएँ भारत की तत्कालीन राजनीतिक व्यवस्था को झकझोर रही थी। सन् १७५९ ई० से सन् १८०६ ई० तक मुगल-शासन की बागडोर शाह आलम द्वितीय के रूप मे थी। परन्तु वह नाम को ही शासक था, क्योकि राज्य की वास्तविक शक्ति गाजीउद्दीन के हाथ मे थी। जिसने सन् १७६१ ई० में

गाजीउद्दीन नगर(सम्प्रति गाजियाबाद) की स्थापना करके मेरठ जनपद के इतिहास में अपना नया अध्याय जोड़ा था। तत्कालीन शासकों की अयोग्यता और अदूरदर्शिता का दुष्परिणाम यह हुआ कि देश भयंकर विनाश की भँवर में फँस गया। और सन् १७६५ ई० में क्लाइव से संधि करके शाह आलम ने बंगाल, बिहार, उड़ीसा की सत्ता ईस्ट इण्डिया कम्पनी के हाथों में सौंप दी जिससे अंग्रेजों को यहाँ जमने का अवसर मिल गया। इस घटना के उपरान्त शाह आलम अंग्रेजों का आश्रित बन गया था। सन् १७७१ ई० में जब शाह आलम मरहठों से मिल गया तो उसकी वह पेंशन बन्द कर दी गई। सन् १७७२ ई० में जब वारेन हेस्टिंग्स को बंगाल का गवर्नर एवं १७७३ ई० में गवर्नर जनरल बनाया गया तब क्लाइव द्वारा स्थापित साम्राज्य को सुदृढ़ शासन की व्यवस्था दी गई। सन् १७८६ ई० में कार्नवालिस गवर्नर जनरल बना, जिसने अंग्रेजी शासन का विस्तार प्रारम्भ किया। सन् १७९८ ई० से १८०५ ई० तक लार्ड वेलेजली ने इस कार्य को आगे बढ़ाया और ईस्ट इण्डिया कम्पनी को देश की सर्वोपरि सत्ता के रूप में प्रतिष्ठित किया। इसलिए दिसम्बर १८०३ ई० में दौलत राव सिन्धिया ने मेरठ जनपद भी ईस्ट इण्डिया कम्पनी को सौंप दिया, जिसका साम्राज्य बाद में हिमालय से लेकर कन्याकुमारी तथा सिन्धु से लेकर ब्रह्मपुत्र तक फैल गया। यह वह समय था जब भारतीय नरेशों का देश पर कोई विशेष प्रभुत्व नहीं रहा था और वे मात्र उपाधियों से विभूषित ही रह गए थे। सारांशतः उस समय की राजनैतिक परिस्थितियों को प्रतिहिंसा, प्रतिकार, प्रतिशोध, विश्वास-घात, विघटन, विच्छेद, विनाश और अविश्वास आदि की प्रतिक्रिया कहा जाय तो अतिशयोक्ति नहीं होगी।

अंग्रेजी शासन के प्रथम चरण का इतिहास शोषण एवं लूट-खसोट की कहानी से प्रारम्भ होता है, जिसका उपसंहार देश के आर्थिक पतन में हुआ था। उन दिनों धन्धे बीमार पड़ गए थे और राष्ट्रीय सम्पत्ति का ह्रास होना प्रारम्भ हो गया था। उत्पादकता पराभव के दामन में लिपटकर सो गई थी। जिससे देश का आर्थिक जीवन पंगु हो गया था। सोने की चिड़िया आंग्ल देश के व्यापारियों और उद्योगपतियों के पिंजरे में कैद हो गई थी। कम्पनी के अभिकर्ता भारत के उत्पादकों से बाजार भाव से बीस प्रतिशत से अस्सी प्रतिशत तक कम मूल्य पर माल क्रय करके उसे ऊँचे मूल्यों पर बेचते थे। कानूनों में परिवर्तन और उद्योग तथा व्यापार में नूतन प्रणाली का श्रीगणेश होने के फलस्वरूप उन दिनों एक नई सामाजिक अर्थ व्यवस्था का प्रारम्भ हो गया था। सम्पत्ति पर व्यक्तिगत अधिकार की प्रवृत्ति ने शनैः शनैः स्वावलम्बी ग्रामीण अर्थ-व्यवस्था का अन्त किया और शहरीकरण की प्रक्रिया प्रारम्भ हुई। परिणामस्वरूप कलकत्ता, मद्रास और बम्बई वाणिज्य और उद्योग के केन्द्र बन गए। देश के राजनीतिक और आर्थिक पतन का

दुष्परिणाम समाज और धर्म के क्षेत्र मे अत्यन्त ही विषैला सिद्ध हुआ। तत्कालीन भारत की दुरवस्था का चित्रण करते हुए विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने यह ठीक ही लिखा है—"सामाजिक रिवाजों म, राजनीति मे, धर्म तथा कला मे हम निष्क्रिय स्वभाव एव पतित परम्पराओ के घेरे मे प्रविष्ट हो चुके थे तथा मानवीय पहलू को भूल चुके थे। सामाजिक जीवन यथार्थ से नीरस हो चुका था जिसको अभिव्यक्ति मृत एव विस्मृत रीतियो, अन्धविश्वासो, दुरुह मान्यताओ, अज्ञान एव सत्राम, स्पर्धा एव कटुता, अलगाव एव जडता मे हो रही थी।"[1]

मानव एक सामाजिक प्राणी है। बौद्धिक विकास के बल पर ही इसने अपने को पशु समाज से अलग किया है और वन्य पशुओं पर शासन करने मे भी यह सफल हुआ है। मानव के इस बौद्धिक विकास मे सहयोगी तत्त्व मूल रूप से विद्या है और इस शिक्षा-जैसे महत्त्वपूर्ण अग की ही अंग्रेजी शासन के प्रारम्भ मे उपेक्षा की गई। इसका दुष्परिणाम यह हुआ कि भारतीय समाज सस्कृति की सौम्य छटा से विरक्त होता गया। बौद्धिक शिक्षा-केन्द्र तथा अध्ययन-स्थल इसलिए विनष्ट और विघटित होते गए क्योंकि वे ऐसी ब्राह्मण परम्परा की छाया मे ऊँघ रहे थे जहाँ से रूढियो की सौगात बाँटी जाती थी। इधर अंग्रेजी शासन अपनी जडें गहरी करने का सतत प्रयास कर रहा था। शिक्षण-पद्धति एव ज्ञान के विघटन के कारण समाज पतन की कुहेलिका मे फँस चुका था। परिणामत अन्धविश्वास और बर्बरता-जैसी कुरीतियाँ धीरे धीरे अकुरित हो रही थी। समाज मे जितना अध पतन नारी जाति का हुआ था उतना अन्य किसी का नही, नारी को बहु-विवाह, बाल विवाह, सती-प्रथा, विधवा विवाह निषेध, कन्या-शिशु की हत्या, शिक्षा से वर्जना, परदा प्रथा आदि रूढियो के बियावान जगल मे रौंदा जा रहा था। अठारहवी शताब्दी के सघन अन्धकार एव धुन्ध से भरे वर्षों म घोर सामाजिक अराजकता भारतीय सस्कृति के प्राण तत्त्व को चूस रही थी। सौम्य, उदार और सहिष्णु आदर्शों का सर्वथा विलोप हो चुका था। औरगजेब के शासन काल मे हिन्दू धर्मग्रन्थो और धर्मस्थलों का जितना विनाश किया गया उससे भी धर्म का चिन्तन-मनन जनसामान्य के हाथो से निकलकर ब्राह्मणो की झोली मे चला गया था। निम्न वर्ग की जनता तो इसके पारायण से पहले ही वचित थी, अब उच्च वर्णों की जनता भी धार्मिक ज्ञानार्जन के क्षेत्र मे मोहताज हो गई थी।

मुगल शासन के प्रारम्भ से ही भारत मे हिन्दू धर्म को कितने थपेडे सहन करने पडे इसका अनुमान लगाना सर्वथा कठिन है। इसका परिणाम यह हुआ धर्म के क्षेत्र मे किसी नूतन परिपाटी का आविष्कार नही किया गया। हिन्दू धर्म की प्रस्तावित वर्ण व्यवस्था को ब्राह्मणो द्वारा ईश्वरीय वर्ण विधान का चोला पहना दिया गया। जिसके परिणामस्वरूप बढती हुई जाति-प्रथा ने अनेक चुटैल

रूढियो को अपने दामन मे छिपाकर दूध पिलाना शुरू कर दिया था। उच्च वर्णो के लिए शूद्र मात्र शोषण के तत्त्व रह गए थे। किसी भी वर्ण के हृदय मे शूद्रो के प्रति तनिक भी सवेदना और सहानुभूति की भावना नही थी। इस प्रकार रूढिगत विचार-धाराओ की महामारी से हिन्दू राज्य भी अछूते नही रह सके और इस वर्ण-व्यवस्था का उन्होनेअपने राज्य मे कठोरता के साथ अनुपालन किया। शूद्रजातियाँ उच्च वर्णो के पैरो की जूतियाँ बनकर रह गईं, जिसके कारण दण्डविधान के भयकर आतक से आक्रान्त होकर वे निम्नतम व्यवसायी बनकर ही रह गए। उधर जब समाज का क्षत्रिय वर्गभी धीरे धीरे विलासिता मे निमग्न होता जा रहा था, तब ब्राह्मण वर्ग भी सकीर्ण विचार बीथियो मे भटक रहा था। उस वर्ग ने वेदो और उपनिषदो के पारायण को महत्त्व न देकर तर्कशून्य मताग्रह और कर्मकाण्डो का अवलम्बन लेकर जन सामान्य को अज्ञान तिमिर म धकेल दिया था। परिणाम-स्वरूप मानव जीवन से नैतिक और धार्मिक मूल्य धीरे धीरे विलुप्त हो गए। धर्म के नाम पर घृणित प्रथाएँ एव वर्जनीय मान्यताएँ सम्पूर्ण देश मे प्रचलित होने लगी थी। ब्राह्मण अपने को ईश्वर का प्रतिनिधि मानने लगे थे। ब्राह्मण का वाक्य ब्रह्मवाक्य समझा जाता था, ब्राह्मण कुल म जन्म लेने मात्र से ही अनपढ और दुष्कर्मी ब्राह्मण भी भगवान् तुल्य ही माना जाता था। ब्राह्मणो द्वारा रचित ग्रन्थ ईश्वर कृत समझे जाते थे। शूद्र धर्म ग्रन्थो के पारायण से वचित थे। स्वार्थ के हितो की रक्षा के निमित्त ब्राह्मणो ने लोगो को शकाओ के चक्रव्यूह मे घेर लिया था। वे कहते थे कि हम प्रसन्न रखना ही भक्तो के लिए हितकारी है। अत लोगों म यह शका घर कर गई थी कि यदि इनके मुख से अशुभ वाक्य निकल गए तो हम न इहलोक के रहेंग, और न परलोक के। इसलिए ब्राह्मणो की समाज मे पूजा होती थी और वे भोले-भाले लोगो स ठगाई करके अजगरी सुख का भोग करते थे। ब्राह्मणो ने लोगो के मन म विप्राणा चरणो तीर्थं की उक्ति की सार्थकता कूट कूटकर भर दी थी। समाज रूढियो और परम्पराओ की परिधि मे कैद था। मुहूर्त और शकुन के बिना कोई व्यक्ति कुछ कार्य ही नही करता था। कदाचित यह इसका दुष्परिणाम था कि सन १७६७ ई० म यदि अवध के नवाब जब एक कमरे से दूसरे कमरे म जाते या कपडे बदलते थे तो पहले ज्योतिषियो से पूछ लेते थे। लोगो को मुहूर्तों, शुभाशुभ दिनो, जादू-टोना, कवचो, झाडफूंक करने वाले सयानो आदि मे विश्वास था। तत्कालीन समाज की विधि के विधान मे पूर्ण आस्था थी तथापि भूत प्रेतो जादू टोना, मन्त्र तन्त्रो आदि कई शक्तियो का प्रयोग वह अपनी कार्य सिद्धि के लिए किया करता था।"[१]

साधुओ का भी लगभग यही हाल था। आग की पाँच पाँच धूनियाँ लगाकर तपना शीत ऋतु मे जल के अन्दर एक पैर से खडा होना, एक हाथ उठाकर खडा होना, अन्य कई प्रकार की क्रियाएँ अपनाकर पाखण्ड का महल खडा

करके भोली जनता के सामने सच्चा नाटक खेल रहे थे। शैव धर्म मे दार्शनिकता का प्रवेश होते हुए भी उसमे आदिम युग की बहुत-सी प्रथाएँ अवशिष्ट थी। शैव धर्म के सग आत्मबलि की प्रथाओ का अवशेष अब तक बगाल के चडक उत्सव मे बच गया है। इस शैव-उत्सव मे, जो कई दिनो तक चलता है, भक्तगण आग पर झूलते हैं, कांटो पर कूदते हैं और अपने को तीर से बेधते हैं। चैत्र पूर्णिमा को वे केले के खम्भे मे लगी छुरियो पर 'जय शिव' कहकर कूदते हैं। जान पडता है इसी प्रथा को स्थिर रूप देकर कभी काशी-करवट की कल्पना की गई और कुछ दिनो मे वह लूट और बदमाशी का साधन बन गया। वारेन हेस्टिंग्स ने इस तरह की ठगी को रोकने के लिए कुछ उपाय किये थे। उसने कोतवाली के अधिकारियो को निर्देश दिया था कि स्वर्ग की कामना से आत्महत्या करनेवाले लोगों को वे समझा-बुझाकर ऐसा करने से रोकें। 'काशी का इतिहास' मे डॉ० मोतीचन्द्र लिखते हैं—"इन अवस्थाओ मे जब यात्री आग में जलकर पानी मे डूबकर अथवा जमीन मे जीवित समाधि देकर अपनी जान गँवाने की इच्छा प्रकट करते थे तो कोतवाली के अफसर वहाँ पहुँचकर उन्हे अपना इरादा छोडने की कोशिश करते। उनके न मानने पर इसकी सूचना वे अदालत को दे देते थे।"[३]

अठारहवी शती के अन्त मे मुस्लिम समाज को राजनीति से मरी मक्खी की भाँति निकालकर फेंक दिया गया। इसका मुस्लिम धर्म पर घातक प्रभाव पडा। शासकीय सरक्षण मिलना बद हो गया और इस्लाम राजमहल की चारदीवारी से मुक्त होकर सूफी विचारको की फकीरी बगिया मे अपनी आयतो की सोंधी सुगध लुटाने लग गया। कालान्तर मे सूफीमत भी गहन अन्धविश्वास और इमामो के सकेतो पर पीरो की अन्ध पूजा मे पतनोन्मुख हो गया। साराशत उन दिनो धर्म पर रूढियो तथा अज्ञान का आवरण बुरी तरह छा गया था।

अत जिस समय देश राजनैतिक परतत्रता, आर्थिक दारिद्रय, सामाजिक वैषम्य और धार्मिक रूढिबद्धता के सकीर्ण चौराहे पर खडा था उस समय देश को एक ऐसे सन्त की महती आवश्यकता थी जो कबीर-जैसे क्रान्तिकारी समाज-सुधारक के सिद्धान्तो को आत्मसात् करके सभी सम्प्रदाय के लोगो मे मानवता-वादी और उदार भाव उत्पन्न करके ऐसा वातावरण तैयार कर सके जिससे विश्व के प्राणीमात्र को ईश्वरीय साधना का सच्चा मार्ग मिल सके और फिरगियो की परतत्रता से मुक्त होने के लिए जनचेतना जाग्रत की जा सके।

सन्दर्भ

१. डॉ० अगमप्रसाद माथुर, 'राधास्वामी मत', पृष्ठ-2
२. डॉ० नित्यकिशोर शर्मा, 'सन्त गगादास के साहित्य का सास्कृतिक अध्ययन', पृष्ठ-५२
३. श्री सत्यनारायण शुक्ल, 'कादम्बिनी', अप्रैल १९८०, पृष्ठ-७३

२

उद्गम एवं विकास

भारतीय साहित्य मे विद्वानो ने धार्मिक, दार्शनिक, सामाजिक एव सास्कृति अवधारणाओ को दो रूपो मे कार्यशील देखा है। इनमे से प्रथम दृष्टिकोण ब्राह्मण-परम्परा और द्वितीय दृष्टिकोण को श्रमण-परम्परा मे सज्ञायित किया सकता है। यह कथन असमीचीन नही होगा कि इन्ही दोनो परम्पराओं ने अप जीवन्त शक्ति के बलबूते पर भारतीय जीवन एव सस्कृति को सर्वदा अनुप्राणि किया है। ब्राह्मण-परम्परा को आगे बढाने का श्रेय ऋषि-मुनियो और विद्वा ब्राह्मणो को दिया जा सकता है और श्रमण-परम्परा को आगे बढाने का श्रे सन्तो को दिया जा सकता है; जिसका प्रतिनिधित्व किया है सन्त कबीरदास ने जिनका प्रत्यक्षाप्रत्यक्ष प्रभाव परवर्ती सन्तो पर भी बना रहा। इसका सुपरिणा यह हुआ कि सन्तो की चिन्तन-धारा से पोषित श्रमण-परम्परा का कल्पत फूलता-फलता रहा।

निर्गुण सन्त-परम्परा मे सन्त कबीरदास का स्थान सर्वोच्च है। गौत बुद्ध द्वारा सचालित श्रमण परम्परा को आगे चलाने का श्रेय सन्त कबीरदास क ही है। धार्मिक चिन्तन की यह धारा ही समय-समय पर अनुकूल परिवेश पाकर निर्गुण सन्तो द्वारा अनेक पन्थो के माध्यम से प्रवाहित होती रही। यहाँ यह बात विशिष्ट रूप से ध्यातव्य है कि पथ' या 'सम्प्रदाय' शब्द का तात्पर्य एक ऐसे परि वार से है जिसमे समान विचार धारा के व्यक्ति रहते हैं। अर्थात् सत् सगियो का एक ऐसा विशाल परिवार जो किसी एक महान् सन्त की गुरुता मे विश्वास रखता हो, उसके सिद्धान्तो का पालन करता हो और उसकी विचार-धारा का अनुयायी हो। यह बात सन्त भीखा साहब ने इस प्रकार स्पष्ट की है

पन्थ और परिवार की, जिनके हृदय न दोय।[1]

प्रोफेसर डॉ० श्रीरजन सूरिदेव के अनुसार—"पन्थ शब्द के अनेक अर्थ कोशो मे उपलब्ध हैं . मार्ग, रास्ता, रीति, धर्म, सम्प्रदाय आदि। किन्तु सन्त-परम्परा मे इसे सम्प्रदाय के अर्थ मे ही ग्रहण किया गया है। प्रत्येक सन्त ने अपने

'पन्थ' या 'सम्प्रदाय' का प्रवर्तन किया है। कोई भी 'पन्थ' अपने प्रवर्तक सन्त के आचार और सिद्धान्त से जुड़ा होता है और उसमे उनकी अपनी जीवन-दृष्टि या दर्शन निहित होता है। इस प्रकार, नवीन जीवन-दर्शन और मार्ग-निर्देशन से सम्बद्ध 'सम्प्रदाय' ही 'पन्थ' के नाम से प्रचारित होता है। आचारपरक धर्म और विचारपरक दर्शन स अनुबद्ध सुनिश्चित सैद्धान्तिक विचारो का केन्द्र ही 'पन्थ या 'सम्प्रदाय' कहलाता है। इसी सन्दर्भ के आधार पर घीसा सन्त द्वारा प्रवर्तित 'पन्थ' 'घीसा पन्थ' के नाम स लोक-प्रचलित हुआ, जिसने मानव को भौतिक लिप्सा स अलग हटकर आध्यात्मिक चेतना से जुड़ने या 'अशुद्धि' से 'विशुद्धि' की ओर प्रस्थान करने का मार्ग दिखलाया और इसी अर्थ मे उनके 'पन्थ' की सार्थकता प्राप्त हुई। कुल मिलाकर मोक्षमार्ग ही 'पन्थ' का पर्याय है।"

इन्ही अवधारणाओ को ध्यान म रखते हुए अनेक पन्थो और सम्प्रदायो का उद्गम हुआ, जिनम कबीर पन्थ, नानक पन्थ, निर्मल पन्थ, सेवा पन्थ, उदासी पन्थ, साध सम्प्रदाय, निरजनी सम्प्रदाय, दादू पन्थ, बावरी पन्थ, मलूक पन्थ, बाबा लाली पन्थ, प्रणामी पन्थ, सतनामी सम्प्रदाय, दरियादासी सम्प्रदाय, शिव-नारायणी सम्प्रदाय, चरणदासी सम्प्रदाय, रामसनेही सम्प्रदाय, पानप पन्थ, गरीब पन्थ, घीसा पन्थ और राधा स्वामी मत आदि की कीर्ति-पताका बडे गौरव क साथ फहराने लगी। इन पन्थो के माध्यम से निर्गुणिया सन्त अपनी विचार-धाराओ द्वारा समाज म सास्कृतिक चेतना का शखनाद करते रहे। इन भावनाओ का प्रकटीकरण सन्त घीसा साहब ने एक स्थल पर इस प्रकार किया है

हम दाता से सतगुरु भए, सतगुरु से भए सन्त।
जुगा जुगी देह धारते, सदा चलाए पथ ॥[२]

इन पन्थो के बहुत से सन्त कवियो पर साहित्यकारो तथा शोधार्थियो द्वारा अनेक शोधपरक ग्रन्थ और लेख लिखे गए हैं तथा उनका प्रकाशन भी हुआ है। परन्तु यह एक आश्चर्य की बात है कि 'घीसा पन्थ' पर किसी भी शोधार्थी या समालोचक ने अपनी लेखनी उठाने का कष्ट नही किया। इसका मूल कारण यह है कि 'घीसा पन्थ' हर प्रकार की विज्ञापनी प्रभावना स अलग-थलग रहकर अपनी आध्यात्मिक विचारधाराओ का प्रसार एव प्रचार अपने अवधूता तथा सन्तो द्वारा करता रहा है। यह हिन्दी साहित्य का दुर्भाग्य ही कहा जायगा कि साहित्यकारो की अज्ञानता के फलस्वरूप किसी भी साहित्यकार ने इस पन्थ की साहित्यिक उपलब्धियो का मूल्याकन करने का किंचित् भी प्रयास नही किया। जबकि यह पन्थ लगभग एक सौ पचास वर्ष पुरातन है और आज भी भारत के हर प्रान्त मे इसकी कीर्ति पताकाएँ फहरा रही हैं।

उन्नीसवी शताब्दी का तृतीय वर्ष निर्गुन सन्त-परम्परा मे एक स्वर्णिम अध्याय सयोजित करता है। जिसमे मेरठ जनपद के खेकडा नामक ग्राम मे सन्त

घीसा साहब का अवतरण हुआ था और आपने सन् १८३० ई० मे जिस पन्थ को जन्म दिया था उसका नाम रखा था—घीसा पन्थ।

सन्त घीसा साहब ने अन्य सन्त कवियो की अपेक्षा अपनी वाणियो को सर्वथा नूतन दृष्टिकोण से प्रस्तुत करके समाज को नवीन दिशा प्रदान की। आपकी नूतन एव समीचीन मान्यताओ से प्रभावित होकर आपके अनेक शिष्य एव अनुयायी हो गए, जिनमे श्री अवधूत नेकीराम, सन्त जीतादास, श्री ढीढेदास, श्री मानदास, श्री हरदयालदास, श्री रामकला, श्री नानू सन्त, श्री हजारी दास, श्री केवलदास और श्री प्रेमदास के नाम मुख्य हैं। इनम से घीसा पन्थ को निरतर गति प्रदान करने वाले शिष्यो म सन्त नेकीराम, सन्त जीतादास, और महन्त प्रेमदास के कार्य सराहनीय हैं। सन्त नेकीराम को १८ वर्ष की अवस्था मे सन्त घीसा साहब के दर्शन हुए थे और आपने उनस भेष ग्रहण करके घीसा-पन्थ के प्रति अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करने के लिए अम्बाला पटियाला, लुधियाना, जालन्धर, होशियारपुर और हरियाणा के अनेक जनपदो म अपने प्रवचन देकर सन्त घीसादास के स्वर्णिम सपनो को साकार किया। सन्त नेकीराम ने इस भगीरथ यात्रा क अन्तर्गत सर्वप्रथम सन् १८७८ ई० म जींद जनपद के अन्तर्गत निरजन नामक ग्राम मे एक सन्त आश्रम की स्थापना करके १०० बीघा भूमि क्षेत्र मे एक हरा भरा उद्यान भी लगाया। आपके बाद यहाँ की गद्दी को श्री मलूकदास ने प्रथम महन्त क रूप मे सुशोभित किया। उनके बाद महात्मा घासीदास द्वितीय महन्त के रूप मे गद्दी पर बैठे। तत्पश्चात् १८६६ ई० मे श्री योगानन्द जी के शिष्य श्री दीप्तानन्द ने तृतीय महन्त के रूप मे इस आश्रम की गद्दी को सुशोभित किया। सन् १८८२ मे श्री दीप्तानन्द के सत्यलोकवासी हो जाने पर घीसापन्थ के अनेक सन्तो के समर्थन से दीप्तानन्द जी के शिष्य श्री महेश्वरानन्द ने अब इस आश्रम की गद्दी को सुशोभित किया है। यहाँ पर प्रतिवर्ष अषाढ सुदी तीज को बहुत बडा मेला लगता है।

सन् १८८० ई० मे सन्त नेकीराम ने अपने ही ग्राम नाहरी मे 'सन्त आश्रम' की स्थापना करके घीसा पथ की कीर्ति-पताका को और भी ऊँचा कर दिया। आपके सत्यलोकवास के उपरान्त सन् १९१२ म आपके भतीजे श्री दलीप साहेब प्रथम अध्यक्ष के रूप मे गुरु गद्दी पर विराजे और आपने यहाँ के कलात्मक विकास को चरमोन्नति पर पहुँचा दिया। सन् १९४४ ई० म श्री दलीप साहेब के सत्यलोकवास के बाद श्री समन्दरदास ने द्वितीय अध्यक्ष के रूप मे गुरु-गद्दी को सुशोभित किया और सन् १९४५ ई० मे हिसार जनपद के अन्तर्गत हाँसी म सन्त आश्रम की स्थापना की, जहाँ आज भी प्रतिदिन सत्सग होता रहता है। यहाँ का प्रबन्ध श्री समरूदास के हाथो म है। इसके बाद आपने सन् १९७१ ई० म मेरठ जनपद के मवाना नामक नगर मे 'श्री सन्त आश्रम' की

स्थापना की। जहाँ की देख-भाल ढिकौली निवासी श्री हरिसिंह साध कर रहे हैं। यहाँ पर मिती पौष सुदी पूर्णिमा को मेला लगता है और महाराज समन्दर-दास सत्सगियो को अपने प्रवचनो से लाभान्वित कराते हैं। सन् १९७२ ई० मे आपके सौजन्य से सीकर जनपद के अन्तर्गत ढाढण स्थान पर 'श्री सन्त आश्रम' की स्थापना की गई जिसका सभी प्रकार का प्रबन्ध आपके भक्त श्री भूपनदास करते रहते हैं। इसके बाद सन् १९७३ ई० म आपने भिवानी के निकट किरावड नामक स्थान पर एक 'सन्त आश्रम' की स्थापना कराई, जहाँ समय समय पर सत्सग होता रहता है। इनके अतिरिक्त राजस्थान, पजाब, उत्तर प्रदेश तथा दिल्ली के अनेक भक्त सन्त आश्रम नाहरी मे विशिष्ट पर्वों पर सम्मिलित होकर परमार्थ लाभ करते हैं। यहाँ पर एक वर्ष मे क्रमश मिती फागुन सुदी पूर्णिमा को, ज्येष्ठ सुदी सप्तमी को, आषाढ सुदी पूर्णिमा को तथा कार्तिक सुदी पूर्णिमा को चार पर्व मनाये जाते हैं। इन आश्रमो के अतिरिक्त गान्धी नगर दिल्ली-३१ (१९६६) और गुलावठी उ० प्र० (१९६९) मे भी आपकी सन्त कुटिया हैं जिनकी देख-रेख क्रमश साध्वी जीवनीमाई तथा नारायणदास कर रहे हैं।

सन् १८९३ ई० म सन्त नेकीराम ने सोनीपत के समीपवर्ती खेडीदमकन नामक स्थान पर एक सत आश्रम की स्थापना की थी जिसका प्रबन्ध आजकल श्री मामराजदास कर रहे हैं। इसके अतिरिक्त यहाँ की शिष्य-परम्परा मे एक आश्रम बडी गाँव, जिला सोनीपत म भी है तथा एक आश्रम सोनीपत जनपद मे कैथल के निकट सतपेडा स्थान पर है जहाँ का सचालन श्री मेहरदास द्वितीय कर रहे हैं। अवधूत श्री नेकीराम जी के शिष्यो म श्री द्योतरामदास और श्री ईश्वर-दास के नाम प्रमुख हैं जिन्होने घीसा-पन्थ को प्रागैतिक योगदान दिया। सन्त द्योतरामदास ने सन् १९२० ई० मे जींद शहर के निकट पाण्डूपिंडारा तीर्थ-स्थान पर एक आश्रम की स्थापना की तथा अनेक शिष्यो को नामदान दिया। इनम से माई बख्तावरीजी, श्री योगानद, श्री तीर्थानद, श्री रामानद तथा वारू दास जी के नाम प्रमुख हैं, जिन्होने घीसा पन्थ की गद्दियो के विकास म सक्रिय योगदान दिया था। सन् १९४४ ई० म आपके सत्यलोकवासी हो जाने पर आपके शिष्य श्री योगानन्द को यहाँ का प्रथम महन्त बनाया गया। प्रबन्ध का कार्य माई बख्तावरीजी के करकमलो मे सौंपा गया। सन्त योगानन्द के उपरान्त सन् १९७३ ई० से यहाँ की गुरु गद्दी की देख-भाल आपके शिष्य श्री दीप्तानन्द ने की और उनके बाद इस गद्दी के सम्प्रति महन्त श्री नरोत्तमदास शास्त्री हैं। अभी इस आश्रम के प्रबन्ध की बागडोर माई वख्तावरी के ही हाथो मे है।

यहाँ पर प्रत्येक वर्ष चैत्र सुदी दसवी और आषाढ सुदी चतुर्थी को दो पर्व मनाए जाते हैं। सन्त योगानद के शिष्या मे श्री दीप्तानन्द, श्री केशवानद, श्री रामेश्वरानद और चेतनानदजी आदि के नाम मुख्य हैं। जिनमे दीप्तानंद जी

सन १६८२ तक निरंजन के आश्रम म गुरु गद्दी पर आसीन रहे। चेतनानन्दजी, केशव कुटीर बडी बहू जिला रोहतक रामश्वरानदजी भ्रमण करक चेतनानद जी सुनहरी आश्रम भूपतवाला भीमगोडा हरिद्वार और चेतना कुटी चन्द्र क्वाटर रामपुरा दिल्ली ३५ के माध्यम से सत्संग लाभ करा रहे हैं। अवधत दीप्तानन्दजी के शिष्यो म श्री नरोतमदास शास्त्री (पाण्डपिंडारा) श्री महेश्वरा नद (निरजन) न दबाबा श्री हरिहरानद श्री प्रमानद और गुरु रामानद के नाम मुख्य हैं। जिसम नन्दबाबा श्री घीसा सन्त महामडल मोतीभील वृन्दावन म और श्री हरिहरान द ोहसार जनपद के खरड और लुधियाना जनपद के चक्कमाफी के आश्रमो का सचालन कर रहे हैं। श्री प्रमानद जीद म अपनी कुटिया बनाकर घीसाप थी साहित्य का प्रणयन कर रहे हैं तथा रामा नन्द जी ान्त आश्रम योग भिवानी म सतसगियो का मागदशन करा रहे हैं। स त खोतरामदास के ही शिष्य श्री तीर्थानन्द ने घीसा पन्थ को अवधूत स्वरूपा नद जैसा शिष्य देकर इस पथ की प्रगति म एक और पावन भागीरथी जोड दी। आप शब्द सुरति साधना क पूण स त थे। आपका जन्म सन १६०२ इ० म हाँसी म श्री नत्राम क घर हुआ था। २८ वष की आयु म आपने गृहस्त्याग करके सन्यास ल लिया था। सवप्रथम आपकी भेंट गरीबप थी अवधूत श्री कृष्णानद स हुई। फिर आपने तीर्थानद स मत्र ग्रहण किया और लुधियाना जनपद के अन्तगत कलाल माजरा नामक स्थान पर सन्त आश्रम की स्थापना की। यह सन १६३३ ई० क आस पास की बात है। इस आश्रम क माध्यम स आपने कई वष तक भक्तो को परमाथ लाभ कराया और २६ जनवरी सन् १६८२ ई० को सन्त मण्डल आश्रम अद्ध कुम्भ मेला शिविर प्रयागराज इलाहाबाद म आप स यलोकवासी हो गए। आपके शिष्यो म आचाय जगदीश मुनि का नाम सर्वाग्रणी है जिन्होने आपकी ही प्ररणा से हरिद्वार म भीमगोडा नामक स्थान पर सतमडल आश्रम की स्थापना की। इसका शिलान्यास आपके करकमलो से २५ माच सन १६७६ ई० को किया गया था। सम्प्रति आचाय जगदीश मुनि इस आश्रम के अध्यक्ष हैं और वे घीसा सन्त महामडल व दावन के महामत्री भी हैं। इसके अतिरिक्त आपकी देख रेख म श्री खोतरामदास कुटीर बराह जि० जीद (प्रबन्धक देवानन्द जी) श्री मर्दानादास कुटीर बूढा खेडा जि० हिसार (प्रबन्धक स्वामी हमा नन्द) कुटी गोपालानन्द इवलधन माजरा जि० रोहतक (प्रबधक—गोपाला नन्द) सिद्ध समाधि बल पो० टहरक जि० गुरुदासपुर (प्रबन्धक—स्वामी कुम्भ ऋषि) तथा सन्त आश्रम कलाल माजरा जि० लुधियाना (मत्री—आ० जगदीश मुनि) आदि आश्रम घीसापथ की विचार धारा को प्रसारित एव प्रचारित कर रहे हैं। आपके शिष्या म श्री अमर मुनि, श्री गोपालचद श्री सागर

मुनि, श्री रमेश मुनि, श्री ईश्वर मुनि तथा राधा भारती और महाभिक्षुणी गौरी माँ के नाम विशिष्ट हैं। महाभिक्षुणी गौरी माँ जय गुरु सेवा आश्रम' राँची (बिहार) के माध्यम स घीसा पथ की कीर्ति पताका को पूर्वी भारत म फहरा रही है।

श्री खोनरामजी के शिष्य अवधूत रामानन्दजी के योगदान को भी भुलाया नहीं जा सकता। आप उच्चकोटि क वक्ता एव प्रचारक थे। यह आपकी तितीक्षा एव परित्याग का ज्वलन्त उदाहरण है कि आपने अपने लिए कहीं भी निवास-स्थान नही बनाया। आप सदा पैदल ही यात्रा किया करते थे। आपके शिष्य श्री बोधानन्द जी सम्प्रति लक्ष्मण झूला पर स्थित एक कुटी मे निवास करके सत्सग का प्रसाद लुटा रहे हैं। श्री वासुदास जी के शिष्य श्री स्वरूपदास जी 'साहिब धाम' बाई पास रोड खडखडी हरद्वार के सस्थापक हैं। इनके अतिरिक्त सन्त दातारामदास की ही शिष्य परम्परा म श्रीमती हरवाई महिला आश्रम तथा सन्तोष महिला आश्रम उक्लाना मडी जि० हिसार, 'सत्सग आश्रम' मनीराम रोड, ऋषिकेश, 'निर्मलानन्द कुटीर' करणपुरा, जि० श्रीगगा नगर, 'मोहन कुटीर' खुमाणो मडी जि० लुधियाना, 'दर्शन कुटीर' नारनौद जि० हिसार, 'कुटिया ललितानन्द' रनियाँ जिला लुधियाना, 'गोपाल कुटिया' भिवानी प्रभृति कुटियाँ हैं।

इस प्रकार सन्त नेकीराम की प्रेरणा से आपके शिष्य सन्त ईश्वरदास ने होशियारपुर जनपद के मेघोवाल नामक ग्राम म 'डेरा रामपुरा' की स्थापना की और यहाँ पर अनेक सिक्खो को अपना शिष्य बनाया। यहाँ पर वर्ष भर मे १-[illegible] पर्व मनाए जाते हैं जिनमे होली और दीपावली के पर्व विशाल होत हैं। ६ नवम्ब[illegible] सन् १९४४ ई० को सन्त ईश्वरदास के निर्वाण पद प्राप्त करने के उपरान्[illegible] आपके शिष्य श्री निरजनदास ने यहाँ की गुरु गद्दी को सुशोभित किया। जालन्धर जनपद म जगतपुरा नामक स्थान के सत्सगियो की बहुलता को देख[illegible] हुए वहाँ भी घीसापथियो क एक डेरे की स्थापना सन्त ईश्वरदास के समय क[illegible] गई थी। सन्त घीसा साहब क द्वितीय शिष्य श्री जीतादास ने अपना ऐसा को[illegible] शिष्य नहीं बनाया जिसने किसी भी स्थान पर किसी आश्रम के माध्यम से 'घीस[illegible] पन्थ' के लिए विकासोन्मुख कार्य किया हो। आप स्वय ही अनेक वाणियाँ लिख कर इस पन्थ के लिए साहित्यिक अनुष्ठान करते रहे।

सन्त घीसा साहब के शिष्यो म सन्त ढीढेदास का भी महत्त्वपूर्ण स्थान है[illegible] जिस समय सन्त घीसा साहब ग्राम कुराड (जि० करनाल) म ६ वर्ष तक इ[illegible] पन्थ के प्रसार क लिए साधना करते रहे थे उसी समय उक्त ग्राम के निवास[illegible] ढीढेदास न आपस भेप ग्रहण करके इस पथ के प्रचार एव प्रसार मे अपना योग[illegible] दान देना प्रारम्भ कर दिया था। एक बार जब सन्त ढीढेदास सोनीपत जनप[illegible]

के हुलालपुर ग्राम म आये तो वहाँ के निवासी छोटूराम ने ढीढेदास को अपना गुरु बना लिया और उनकी प्रेरणा से वहाँ पर घीसापन्थी सन्त आश्रम का भी निर्माण कराया, यह सन् १८८० ई० के आस-पास की बात है। सन्त छोटूदास ने इस सन्त आश्रम के माध्यम स सन् १९२४ ई० तक इस पन्थ की सेवा की और जेठमास की पूर्णिमा को अपने भौतिक शरीर को त्याग दिया। सत्यलोकवास के उपरान्त आपके शिष्य श्री दिलेदास ने वहाँ की गद्दी को द्वितीय महन्त के रूप मे सुशोभित किया। सन् १९४३ ई० महन्त दिलेदास के निर्वाण के उपरान्त उस आश्रम की देख भाल साध्वी पालोमाई के हाथो मे आ गई। उन्होने वहाँ पर १८ अक्तूबर सन् १९५८ ई० को अपने लिए भी एक समाधिस्थल का निर्माण कराया और एक वर्ष के अन्तर्गत ही अपना शरीर त्याग दिया। यहाँ पर ध्यातव्य है कि साध्वी पालोमाई ने सन्त छोटूदास की स्मृति मे एक अष्ट पहलू मन्दिर का निर्माण महन्त दिलेदास के जीवन काल मे ही करवा दिया था।

सम्प्रति इस आश्रम की गद्दी के महन्त श्री रूपदास हैं, जो महन्त दिलेदास के ही शिष्य हैं। श्री रूपदास के शिष्यो मे स्व० श्री मेहरदास, श्री भगवान, श्री भजनदास, श्री रतनदास तथा साध्वी रिशाल देवी आदि हैं जो इस आश्रम मे सेवा-रत हैं। यहाँ पर हर मास की पूर्णिमा को सत्सग होता है और हर वर्ष जेठमास तथा माघ मास की पूर्णिमाओं को मेले लगते है।

श्री रूपदास की ही प्रेरणा स आपके शिष्य श्री मेहरदास ने सन् १९३४ ई० मे जीद जनपद के रोहड स्थान पर एक 'सन्त आश्रम की स्थापना की थी। सम्प्रति इस आश्रम के महन्त श्री नेकीदास हैं।

श्री दिलेदास ने इस पन्थ को प्रगति देने मे अपना पर्याप्त सहयोग दिया और करनाल जनपद के सिभला ग्राम मे सन् १९२५ ई० मे एक 'सन्त आश्रम' का निर्माण कराया और दस बीघा जमीन म बाग भी लगवाया। सन् १९४३ ई० मे आपके साकेतवासी हो जाने पर इस आश्रम की गद्दी पर आपके शिष्य सन्तदास प्रथम महन्त के रूप मे आसीन हुए। इस समय इस आश्रम के महन्त श्री सूरजभाग हैं जो सन्तदास के शिष्य है। यहाँ पर भी हर वर्ष माघ मास की पूर्णिमा को मेला लगता है।

सन्त दिलेदास के शिष्यो मे श्री हरिहरदयाल का नाम भी अविस्मरणीय है जिन्होने करनाल जनपद के मुहाबटी स्थान पर सन् १९२७ ई० मे एक 'सन्तआश्रम' की स्थापना करके उस आश्रम के द्वारा घीसा पन्थ का प्रचार एव प्रसार किया था। सन् १८७३ ई० म आपके देहत्याग के उपरान्त यहाँ की महन्त-प्रतिष्ठा का उत्तरदायित्व आपके शिष्य श्री आत्मदास द्वारा वहन किया जा रहा हैं।

सन्त हरिहरदयाल ने अनेक शिष्यो को भेष धारण कराया। आपके सक्रिय शिष्यो मे श्री नन्ददास, श्री रतीरामदास मौजी (गुदडी वाले), श्री देव चैतन्य-

राय निर्वाण' के नाम प्रमुख हैं। इनम से श्री नन्ददास के अथक परिश्रम से जीद जनपद के गोविन्दगढ खोकड स्थान पर सन् १९३४ ई० म एक 'सन्त आश्रम' की स्थापना करके उसके सचालन का भार अपने ऊपर लिया।

सन्त हरिहरदयाल के द्वितीय शिष्य श्री रतीरामदास 'मौजी' ने सन् १९४४ ई० मे करनाल जनपद के भाऊपुरा नामक स्थान पर एक 'सन्त आश्रम' की स्थापना की। यह स्थान मुहावटी से पाँच मील की दूरी पर है। सन् १९७२ ई० से उनके निर्वाण के बाद इस गद्दी का उत्तरदायित्व उनके ही शिष्य आत्मदास के हाथो म है। जो इस समय मुहावटी के 'सन्त आश्रम' के भी महन्त हैं। यहाँ हर वर्ष भाद्रपद की पूनम को मेला भरता है।

उपरोक्त 'सन्त आश्रम' की स्थापना के छ वर्ष के उपरान्त सन् १९५० ई० म श्री रतीरामदास 'मौजी' ने सोनीपत के निकट हुल्लाहेडी नामक स्थान पर एक आश्रम की, स्थापना की, जिसकी देख रेख सन् १९७२ ई० के बाद सन्त दिनेदास के शिष्य सन्तदास सिभला (जि० करनाल) म रहते हुए की। सनदास क बाद सम्प्रति इस आश्रम के महन्त श्री रूपदास के शिष्य श्री जगदीश हैं।

सन्त हरिहरदयाल के तृतीय शिष्य देव चैतन्यराय 'निर्वाण' का घीसापन्थ की साहित्यिक एव दार्शनिक चेतना म विशिष्ट स्थान है। आपने अपने लिए किसी भी आश्रम की स्थापना नही की। आप मुक्त रूप स इस पन्थ के विकास में अपना अनन्य सहयोग देते रहे। आपका पूर्ण परिचय इस पुस्तक मे अन्यत्र दिया गया है।

सन १८६८ ई० म सन्त घीसासाहब के उपरान्त आपके पुत्र श्री प्रेमदास को 'सतगुरु घीसा सन्त साधु आश्रम' खेकडा, जि० मेरठ की गद्दी पर प्रथम महन्त क रूप म बिठाया गया, अनेक सुशिष्यों और सत्सगियो की प्रेरणा तथा सहयोग स यहाँ पर अत्यन्त रमणीक वाटिका म जो उनक जीवन काल म ही सुशोभित हो चुकी थी विधिवत् उनकी समाधि क रूप म चिरस्मरण के लिए एक अष्टपहलू पक्का भवन बनवाया गया जो छतरी साहब के नाम स विख्यात है। इस आश्रम पर मिती आषाढ शुक्ला पूर्णिमा, मार्गशीर्ष शुक्ला दसमी तथा फाल्गुन शुक्ला पूर्णिमा को नियमित रूप स वर्षभर मे तीन पर्व मनाए जाते हैं जहाँ हजारो सत्सगी भक्त लोग 'छतरी साहब' व सन्त महात्माओ के दर्शन लाभ से स्वय को धन्य समझते हैं। महन्त श्री प्रेमदास ने अपने जीवन-काल म अनेक शिष्यो को घीसा पन्थ के नियमो से अवगत कराके उनका आध्यात्मिक मार्ग निर्देशन किया, आपके अनन्य शिष्यो मे श्री अवगतदास तथा श्री हरिहरगोपालदास के नाम विशिष्टरूपेण उल्लेखनीय हैं। सन् १९१३ ई० म श्री प्रेमदास के सत्यलोकवासी हो जाने पर श्री रामकृष्णदास ने द्वितीय महन्त के रूप मे 'सतुगुरु घीसा सन्त साधु आश्रम' खेकडा की गुरु गद्दी को सुशोभित किया। आपने अपनी

हसदेव, श्री लालदास, नरसिंह सेव, ध्यानदास, रामतीर्थ के नाम अधिक ख्याति-अर्जित हैं, जो गद्दियों के विकास मे अपना अविरत प्रयास कर रहे हैं

अवधूत चन्दनदेव की प्रेरणा से अनेक स्थानो पर घीसा-पंथी आश्रमो की स्थापना की गई। सन् १६६२ मे आपके आदेश से सुन्हैड़ा में सन्त नवलीदेव जी की समाधि का कार्य सम्पन्न किया गया। इस आश्रम की व्यवस्था आपके शिष्य श्री मलखानदास जी कर रहे हैं। श्री पूरणदास जी मेरठ जनपद के यादूपुर नामक स्थान के निकट 'सन्त कुटी' मे रहकर साधना मे सलग्न हैं। श्री रघुबर-दयाल शास्त्री स्टेशन रोड, ऋषिकेश पर सस्थापित 'अवधूत आश्रम' के सस्थापक हैं। जिसकी स्थापना अवधूत की प्रेरणा से सन् १६६१ में की थी। यहाँ पर प्रतिवर्ष जेठ के दशहरे और आषाढ की गुरु पूर्णिमा पर दो पर्व मनाए जाते हैं। यह श्री रघुवरदयाल शास्त्री की तितीक्षा का ही सुपरिणाम है कि वृन्दावन मे मोतीझील पर स्थित 'श्री घीसा सन्त महा मण्डल' आश्रम की व्यवस्था का उत्तर-दायित्व आपके शिष्य श्री सर्वेश्वरानन्द और हौज काजी, दिल्ली म एक आश्रम का प्रबन्ध श्री पुरुषोतमदास सोनीपत जनपद के सिसाना और खरखौदा के बीच अवस्थित नारायण आश्रम मे श्री ब्रह्मदास जी हर रविवार को सत्सग के द्वारा भक्तो का मार्गदर्शन कर रहे हैं। मुजफ्फरनगर जनपद के थाना भवन नगर से ४ मील पश्चिम की ओर ईन्नसपुर मे एक छोटी-सी सत कुटी है जिसम श्री स्वरूप-दास का डेरा है। बीकानेर जनपद क मीनासर नामक स्थान मे भी एक अवधूत आश्रम है। इस आश्रम की स्थापना सन् १६६६ ई० मे हुई थी। यह आश्रम अवधूत चदनदेव की प्रेरणा से अवधूत श्री पूर्णानद की स्मृति मे निर्मित किया गया है। सन् १६६६ से ही यहाँ पर चैत्र सुदी दोयज को एक विशाल मेला लगता है। इसका निर्माण सेठ श्री भीखनचद सारडा ने कराया था। सम्प्रति श्री सारडा के पौत्र श्री गौरीशकर सारडा इस आश्रम के प्रबन्धक हैं और अवधूत चदनदेवजी के शिष्य श्री हसदेवजी सम्प्रति महन्त हैं। यहाँ यह बात विशेष रूप से उल्लेखनीय है की श्री पूर्णानद जी अवधूत चदनदेव के शिष्य न होकर अतरग साथी थे और फिर विचारानुयायी हो गए थे। इसलिए आपका नाम उनकी शिष्य परम्परा मे रखना असमीचीन नही कहा जा सकता।

श्री लालदास जी हरद्वार के भोपतवाला स्थान पर बने 'श्री चदन आश्रम' की व्यवस्था सुचारु रूप से चला रहे हैं। एक आश्रम श्री घीसा पथ अवधूत आश्रम' नाम से बाईपास रोड खड़खड़ी मे भी है जहाँ का प्रबन्ध श्री नरसिंह देव के हाथो मे है। यहाँ यह बात भी उल्लेखनीय है कि यहाँ पर 'अवधूत श्री चदनदेव धर्मार्थ ट्रस्ट' का कार्यालय भी है जिसकी स्थापना सन् १६७० ई० में हुई थी। श्री स्वरूपदासजी इस ट्रस्ट के अध्यक्ष हैं। श्री मलखानदास निर्माण मत्री हैं। गणेशलाल मोहता मत्री हैं और कोषाध्यक्ष हैं श्री चम्पालाल खत्री।

इस ट्रस्ट का लक्ष्य अन्न, वस्त्र एव आवास द्वारा सन्तो, गृहिस्थयो, विद्यार्थियो तथा वानप्रस्थियो की सेवा करने के साथ-साथ आयुर्वेदिक औषधियो का अनुसधान करना एव पुस्तकालय, औषधालय का सचालन करना है। गाजियाबाद जनपद के बृजघाट (गढ़मुक्तेश्वर) स्थान पर भी एक 'अवधूत आश्रम' है जहाँ के सम्प्रति व्यवस्थापक श्री स्वामी ध्यानदास हैं। सहारनपुर जनपद के ढोढकी ग्राम में श्री सजानदास की समाधि है, जहाँ का प्रबन्ध श्री सेवाराम कर रहे हैं। यहाँ आधे आषाढ़ एकम को मेला लगता है। जि० मुजफ्फरनगर के ग्राम ढिढावली मे भी एक साधु आश्रम है जिसका प्रबन्ध अवधूत चन्दनदेवजी के शिष्य स्व० रामचरणदासजी के शिष्य खड़ेश्वरी अमरदासजी के कर कमलो मे है। इनके अतिरिक्त अवधूत चन्दनदेवजी के कुछ शिष्य ऐसे भी हैं जो किसी आश्रम के महन्त नही हैं परन्तु जिज्ञासु भक्तो की ज्ञान-पिपासा को तृप्त करने के लिए सतसग हेतु भ्रमण करते रहते हैं ऐसे महानुभावो मे स्वामी कृष्णस्वरूप तथा स्वामी मोनीदास के नाम सराहनीय हैं।

इस प्रकार हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि घीसा पथ भारत के सभी प्रान्तो मे फैला हुआ है। कश्मीर से लेकर कन्याकुमारी तक, ब्रह्मपुत्र से लेकर सिन्धु तक इसके अनुयायियो की काफी धूम है। घीसा पथ की सन्त परम्परा मे जिन सन्त कवियो ने वाणियो और पदो की सर्जना करके जन-मानस को सर्वथा नूतन दिशा प्रदान की थी उनमे सन्त घीसा साहब, सन्त जीतादास, अवधूत नेकोराम जी, श्री प्रेमदास, सन्त ईश्वरदास, सन्त अवगनदास, सन्त योगानन्द, श्री दलीप साहेब, श्री अचलदास, सन्त मगनदास, अवधूत चदनदेव, श्री समन्दरदास स्वामी आत्मप्रकाश और आचार्य जगदीश मुनि प्रभृति सन्त कवियो के नाम विशिष्ट हैं जिन्होने घीसा पथ की साहित्यिक चेतना मे अपना अन्यतम योगदान किया। इनका विशद विवरण आगामी पृष्ठो मे दिया जायगा।

सन्दर्भ

१ सन्त घीसा साहब, 'श्री ग्रन्थ साहेब', पृष्ठ ४ वाणी ५
२. उपरिवत्, पृष्ठ ३, वाणी ४

३

जीवन-वृत्त एवं विचार-धारा

सन्त घीसा साहब का जन्म मेरठ जनपद के खेकडा नामक ग्राम मे हुआ था।[1] यह ग्राम दिल्ली से सहारनपुर जाने वाली रेलवे लाइन पर बीस मील की दूरी पर बाएँ हाथ पर स्थित है। आपके पिता श्री सदासुखलाल कौशिक[2] कबीर पथ के अनुयायी एव अनन्य भक्त थे। इसी कारण उनके हृदय मे सन्तो के प्रति अगाध भक्ति कूट-कूटकर भरी हुई थी। सन्तो के प्रति उनमे इतनी अटूट श्रद्धा थी कि जीविका द्वारा अत्यन्त परिश्रम से उपार्जित किया हुआ धन भी वे सन्तो की सेवा मे सहज भाव से अर्पित कर दिया करते थे। सर्वप्रथम सन्तो-साधुओं को भोजन कराने के उपरान्त स्वय भोजन ग्रहण करना उनकी विशिष्ट प्रवृत्ति बन गई थी। उनकी सहधर्मिणी पत्नी भी अपने पति के सदृश ही सन्तो के प्रति श्रद्धा भाव से ओत प्रोत थी और भजन आदि से उनका स्वागत कर स्वय को गौरवशालिनी समझा करती थी। इतना सब-कुछ होने पर भी वे सन्तान-विहीन थे यह एक विडम्बना नही तो और क्या है। सन्त घीसा साहब के जन्म की भी एक बेजोड कहानी[3] है। एक बार खेकडा के उत्तर-पश्चिम मे अहीरो के तालाब पर साधु के वेश मे सन्त कबीरदास पधारे। सदासुख जी के अनन्य प्रेमी मईराम ने यह सूचना उन्हें दी। यह शुभ समाचार सुनकर सदासुख जी की प्रसन्नता का ठिकाना न रहा और वे भोजनादि तैयार कराकर उनके पास पहुँच गए। श्रद्धा भाव से भोजन कराकर उन्होने महात्माजी से अपने घर चलने के लिए अनुरोध किया। सदासुखजी का अनुरोध स्वीकार कर महात्माजी उनके घर चले आए और दोनो ही प्राणी महात्माजी की सेवा-सुश्रूषा मे लग गए। भक्त की भक्ति की परीक्षा करने के लिए महात्माजी शय्या पर ही मल-मूत्र कर दिया करते थे। सदासुखजी बड़ी श्रद्धा के साथ शय्या पर दूसरा बिछौना कर दिया करते थे। दैवयोग मे उनके छोटे भाई का देहावसान हो गया। इधर शोक-सागर मे डूबा हुआ परिवार उस अर्थी को श्मशान मे ले चलने की

तैयारी कर रहा था उधर महात्माजी ने परीक्षा की उचित घडी समझकर क्षुधा-तृप्ति के लिए भोजन की इच्छा व्यक्त की। अटूट भक्ति मे पगे हुए सदासुख जी ने तुरन्त भोजन तैयार कराया। महात्मा जी ने अपनी परीक्षा और भी जटिल कर दी। कहा—'यह भोजन सुन्दर नही है।' फलत पुन भोजन तैयार कराया गया। फिर भी भोजन मे कोई त्रुटि बनाकर भोजन अस्वीकार कर दिया। भोजन तीसरी बार तैयार कराया गया। अन्त में उनकी इस प्रगाढ भक्ति से प्रसन्न होकर महात्माजी ने श्मशान मे शव को जलाने की आज्ञा दे दी। उस समय सदासुखजी की परीक्षा की घडी कितनी वज्रपाती रही होगी इसका अनुमान एक भक्त नही लगा सकता। तदुपरान्त महात्माजी अत्यन्त प्रसन्न हुए और उनसे कुछ वर मांगने के लिए कहा। सदासुखजी ने विनम्र भाव से कहा कि महाराज! आपकी दया से सभी प्रकार का आनन्द मगल है वरन फिर भी आपका स्मरण बना रहे ऐसा वर दीजिए। महात्माजी ने 'एवमस्तु' के उच्चारण के साथ अपना सिर हिलाया और 'मैं ही आपके यहां अवतार लूंगा' ऐसा कहकर वहाँ से अन्तर्धान हो गए। यह सन् १८०२ ई० की बात है। एक वर्ष के अनन्तर ही उनकी धर्मपत्नी की कोख से आषाढ गुरु-पूर्णिमा सन् १८०३ को प्रात काल जिस बालक का जन्म हुआ वही आगे चलकर सन्त घीमा साहब के नाम से विख्यात हुआ। सन्त देव चैतन्य राय 'निर्वाण' ने आपके जन्म के विषय मे इस प्रकार लिखा है.

> सदासुख कौशिक ब्राह्मण भाई, गुरु कबीर का था अनुयायी।
> साधु सेवा मे भरपूर भौंरा, दर्श हेतु नित गांव का दौरा।
>
> अठारा साठ विक्रमी जाना, प्रात काल था सोम समाना।
> गुरु पूजा पूर्णिमा सोई, रौनक सदा सुख के होई।'

शैशव-काल से ही सन्त घीमा साहब ने अपने चमत्कारों से लोगो को चमत्कृत करना प्रारम्भ कर दिया था। इसी कारण सेकडा के अनेक लोग आपके अनुयायी हो गए थे। यद्यपि आपकी शिक्षा अधिक नही हुई थी फिर भी आप १४ वर्ष की आयु से ही वाणियो के सृजन मे प्रवीण हो गए थे। वैसे तो यह आपकी जन्म-जात सम्पत्ति थी। यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि आपने अपनी जीविका के लिए जिस कारोबार का प्रारम्भ किया था वह आपकी जाति की लीक से हटकर था। साथ ही जातिवाद के विरोध की एक नई क्रान्ति का श्रीगणेश भी था। यह कारोबार था एक जुलाहे का, जिस कारोबार ने आपकी जन्म-जात जाति को बदलकर अन्त मे एक जुलाहे की संज्ञा दे दी। परन्तु आपके अनुयायियो के अतिरिक्त इस रहस्य को कोई भी नही समझ पाया कि यह ब्राह्मण जुलाहे का धन्धा अन्ततः आध्यात्मिक कसौटी पर भी एक ताना-बाना बुन रहा है।

आपके भक्तो और अनुयायियो की सख्या धीरे-धीरे बढती गई। आस-पास के अतिरिक्त दूर-दूर तक आपका यश बढता गया और आपने एक पथ को जन्म दिया, जिसे आज 'घीसा पथ' के नाम से जाना जाता है।[1] यह सन् १८३० ई० की बात है। अपने पथ मे सिद्धान्तो द्वारा जन-मानस का मार्ग आलोकित करते-करते एक बार दिल्ली की सैर करने के विचार से आप दिल्ली शहर मे पहुँच गए। उस समय आपके साथ आपके शिष्य श्री जीतादास और सेवादास थे। वहाँ पर आपके नीर-क्षीर-विवेकी विचारो से प्रभावित हो अनेक भक्तो ने आपका पथ स्वीकार किया। इनमे से एक शिष्य बहादुरशाह जफर के दरबार मे जरी का कार्य करने वाला कोलादास भी था। उसका नाम आपने रखा था कँवलदास। कँवलदास ने जब आपकी चर्चा बहादुरशाह जफर से की तो वे आपके पास हाथी पर चढकर आए। बहादुरशाह की जिज्ञासा को जानकर आपने उनसे कहा कि हे लडके क्या माँगता है? बहादुरशाह ने कहा कि महाराज मेरे औलाद नही है। आपने कहा कि तेरे कर्म मे औलाद नही है। बहादुरशाह नत-मस्तक हो विनती करने लगे—'खुदा मेरे ऊपर मेहर करो!' सन्त ने कहा मास-मदिरा का परित्याग करो तब सन्तान पैदा होगी। बहादुरशाह ने कहा मैं बिना इन वस्तुओ के जी नही सकता। जब बहादुरशाह ने अत्यन्त विनती की तो घीसा सन्त ने 'एवमस्तु' कहकर अपना हाथ उठा दिया। जब बहादुरशाह ने गुरु दक्षिणा मे हाथी देने को कहा तो घीसा सन्त ने कहा कि इस कटडे की हमे आवश्यकता नही है। अपने कटडे को ले जाओ। फिर बहादुरशाह ने हाथी पर घीसा सन्त को सारी दिल्ली की सैर कराई। अन्त मे वापस आते समय बहादुरशाह को आपने यह कहला भेजा कि 'अग्रेज कलकत्ता मे दिल्ली आने वाले हैं। तुझे पकडकर विलायत पहुँचा देवेंगे। अपना बन्दोबस्त कर लेना। सन् १८५७ मे गदर पडेगा।' यहाँ यह विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि इस गदर मे घीसापथियो ने अग्रेजों का डटकर विरोध किया था। यहाँ तक कि उनके अनेक अनुयायियो को अग्रेजो ने अत्यन्त कठोर दण्ड भी दिया था। फिर भी राष्ट्रीय चेतना का शखनाद आप अपनी आध्यात्मिक रग से रँगी वाणियो और पदो द्वारा करते रहे।[1]

आपने जीवन-काल मे ही घीसा पथ मेरठ जनपद की परिसीमा से बाहर निकलकर हरियाणा, पजाब, राजस्थान, दिल्ली, उत्तर प्रदेश और गुजरात आदि प्रान्तो तक फैल गया था। अनेक स्थानो पर आज भी आपकी गद्दियाँ विद्यमान, हैं जहाँ विपुल मात्रा मे उनका साहित्य उपलब्ध है। इन गद्दियों पर विभिन्न पूर्णिमाओ पर मेले लगते हैं, जहाँ सहस्रो की सख्या में घीसापथानुयायी आकर श्रद्धाभाव से अपना मस्तक झुकाते हैं। आपने मिति मग शिर सुदी दशमी, सन् १९६८ को इस पच भौतिक शरीर का परित्याग कर निर्वाण पद प्राप्त किया था। इस सम्बन्ध मे देव चैतन्य राय 'निर्वाण' की ये पक्तियाँ भी प्रसिद्ध हैं :

संवत् उन्नीस सौ पच्चीसा, शरीर अन्त कीन्हा गुरु घीसा।
मगसिर सुदी दसवीं जाना, गुरु घीसा सत पद में समाना॥

आज भी सद्गुरु घीसा सन्त दरबार खेकड़ा में मार्गशीर्ष सुदी दसवीं, फागुन सुदी पूर्णिमा और आषाढ़ सुदी पूर्णिमा को मेले लगते हैं।

चमत्कार—सन्त घीसादास ने समय-समय पर अपने भक्तों की सहायता करने के लिए अनेक चमत्कारों का अवलम्बन लिया, जिनसे उनकी महान् एवं अलौकिक शक्ति का परिचय मिलता है। कतिपय चमत्कार पठनीय हैं—

(१)

एक समय सदासुखजी के घराने में एक बारात बदरखा ग्राम (जि० मेरठ) में गई थी। सदासुख जी उस बारात में अपने लड़के (सन्त घीसा साहब) को भी साथ ले गए। जब बारात बदरखा ग्राम के समीप जाकर ठहरी तो गाँव के अनेक स्त्री पुरुष बारात देखने के लिए वहाँ आ पहुँचे। बाल्यावस्था में ही [illegible] को प्राप्त एक १६ वर्षीय ब्राह्मण की लड़की भी उस बारात को देखने आई। उसने जब सदासुख की गोद में आनन्दकन्द श्रीकृष्ण भगवान् को [illegible] सहित बैठे देखा तब उसके अन्तःकरण में प्रेम की अगाध धारा [illegible] उठी, और उसका मस्तक सन्त घीसादास के चरणों में श्रद्धा से झुक [illegible]। थोड़ी देर के उपरान्त वह अपने भाई-भतीजों को बुलाकर लाई और [illegible] श्रद्धा से प्रसाद चढ़ाया। जब पारिवारिक जनों ने उस लड़की से पूछा कि ये कौन हैं, तब उसने उत्तर दिया 'ये श्री कृष्ण भगवान् हैं [illegible] का उद्धार करो, यही बात वह बार-बार पुकार [illegible]। [illegible] सभी लोग उपहास करते रहे। परन्तु सन्त [illegible] केवल उस ब्राह्मण सुता को ही दिखाई दे रहा था। [illegible] को सच्चा भक्त ही जान सकता है, अभक्त नहीं।

(२)

सुखलाल भक्त सन्त घीसादास का अनन्य [illegible] उठकर अपने गुरु के पास जाया करता था और [illegible] था। एक बार की बात है उसने बारह बीघा [illegible] लगाने की समस्या उत्पन्न हुई। लोगों ने [illegible] देने से इनकार कर दिया और कहा कि तू [illegible] है उसीसे भरवा ले। बेचारा सुखलाल [illegible] रहता था और शाम को खेत में आप [illegible] करके घर पर आ जाता था। एक दिन [illegible] को सुनाई कि महाराज लोग कहते हैं कि [illegible] उसीसे खेत भरवा ले और वह [illegible]

पाकर सो गया। जब निद्रा देवी ने उसे सपनो की रंगीन वादियो मे पहुँचा दिया तो उसने देखा कि हाथ मे फावडा लिये सन्त घीसादास खेत मे पानी लगा रहे हैं। उनका पैर आग पर पड गया है। सुखलाल कहता है कि महाराज आपका पाँव जल गया। इतने मे आँख खुल गई। सुखलाल बेचैन हो उठा। तुरन्त ही उठकर वह महाराज के पास पहुँचा। बन्दगी करी और चरण सेवा करने लगा। अचानक उसने देखा कि महाराज के तलवे मे छाला पडा हुआ है। भक्त सुखलाल की उत्कंठा का ठिकाना न रहा। वह पूछने लगा कि महाराज आपके चरण मे यह छाला कैसे पडा। तब सन्त घीसादास बोले कि हे लड़के! अभी तो तू अपने घर पडा हुआ कह रहा था कि महाराज आपका पाँव आग पर पड गया है। सवेरा हुआ। सुखलाल अपने खेत पर पहुँचा। वह अचम्भित रह गया। उसका सारा खेत पानी से भरा हुआ था। जिस जगह वह आग दबाकर आया था वहाँ पर पैर का चिह्न भी बना हुआ था। आस-पास के गाँव के आदमी देखने आए और सभी ने बडा आश्चर्य माना। तब से सुखलाल के परिवार वालो को महाराज जी पर विश्वास हो गया कि ये तो सद्गुरु हैं और वे भी सत्सग मे आने लगे।

उपलब्ध साहित्य—हमे सन्त दरबार खेकडा से एक ऐसा ग्रन्थ 'श्री ग्रन्थ साहेब' प्राप्त हुआ है जिसमे आपके अतिरिक्त आपके शिष्य जीतादास, श्री अचलदास और श्री अवगतदास जी की वाणियाँ, शब्द, साखी, पद और आरती हैं। उन सबकी सख्या ३५३३ है। इनमे से सन्त घीसा साहब के पदो, वाणियो और आरती की कुल सख्या २०४ है। एक पद हमे एक घीसा-पन्थी भक्त से मिला है जिसका कथन है कि इस पद को मेरे पिता गाया करते थे

सखी तेरी पीव बिना ख्वारी।
साँस सबद के फेरे लँके प्रेम पालकी जा री।
शील सिन्दूर लगा मस्तक पै सत् का राग सुना री।
सुन्न महल मे सेज पिया की निर्भय प्रेम जगा री।
रामनाम का चूनर ओढ़े छिमा की सेज सजा री।
घीसा सन्त शरण सतगुरु की, अगम राह तू पा री।

इस प्रकार अब तक घीसा सन्त की वाणियो, पदो की सख्या २०५ तक पहुँच गई है। यह बात अवश्य है कि ये पद सख्या मे कम हैं, परन्तु प्रत्येक पद की प्रत्येक पंक्ति का प्रत्येक शब्द सहजानुभूति का सशक्त माध्यम है।

इनके अतिरिक्त घीसापन्थी सन्त कवियो के पदो की अनुमान लगाना असम्भव ही है, क्योकि कई पन्थानुयायी आज भी अनेक वाणियो का प्रयोग कर रहे हैं।

सत्य का महत्त्व—सन्त धीसा साहब ने अपनी वाणियो मे सबसे अधिक महत्त्व सत्य और गुरु को ही दिया है। भक्ति, योग, ज्ञान और विज्ञान आदि के प्रतिपादन मे सत्य का ही प्राधान्य रहा है। यहाँ तक कि ईश्वर-प्राप्ति के लिए भी भक्ति का प्रथम सोपान आपने सत्य को ही माना है। सत्य की तोप मे अपार शक्ति है। इसमे भक्ति का गोला डाला जाता है। ज्ञान रूपी पलीते से उसे स्फुरित किया जाता है। जिससे भ्रम की दीवार समाप्त हो जाती है। भक्त का हृदय ज्ञान के प्रकाश से आलोकित हो उठता है, भक्त अपनी साधना मे साफल्य की प्राप्ति करता है और सुरति की अनुभूति के द्वार से अपने प्रियतम (ईश्वर) का रूप देखने म सफल होता है। जहाँ अनहद वाणी गुजार करती है। इतना ही नही अग्रगमन के लिए रामनाम की ढाल का उल्लेख भी सन्त ने बडी मार्मिकता के साथ किया है।[८] उस सत्य का ज्ञान कराने वाले प्रणेता सत्गुरु होते हैं। इसी कारण सत्गुरु को सत्यरूप भी कहा है। और जिस अनन्त ज्योति के लिए सत्य की बन्दगी की जाती है, सत्य के प्रथम सोपान से भक्ति की यात्रा का प्रारम्भ होता है उस अखण्ड शक्ति को कहा है 'सत् साहेब' और यही 'सत् साहेब' धीसा सन्त द्वारा भक्तो एव शिष्यो को दिया गया नाम-स्मरण है।

गुरु की महत्ता—यद्यपि धीसा सन्त के गुरु का नामोल्लेख करने मे अन्तर्साक्ष्य और बहिर्साक्ष्य असमर्थ ही रहे हैं फिर भी आपने अगम पथ के लिए सत्गुरु का ही महत्त्व स्वीकार किया है। यह बात अलग है कि जो सन्त स्वय कबीर का अवतार है उसे गुरु की क्या आवश्यकता है। तथापि ब्रह्म रूपी कस्तूरी प्राप्त करने के लिए गुरु का होना नितान्त अनिवार्य है[९] और उसके लिए आपने सन्त कबीर-जैसे गुरु का उल्लेख किया है जो घट-घट मे व्याप्त है।[१०] आज भी आपके दरबार मे जो आरती की जाती है उसमे कबीर का स्वरूप दर्शनीय है[११]—

कक्का केवल नाम है, बब्बा ब्रह्म शरीर।
ररा सबमें रम रहा, ताका नाम कबीर।
पानी से पैदा नहीं, श्वास नहीं शरीर।
अन्न आहार करता नहीं, ताका नाम कबीर।

गुरु का नाम सदा ही लीजे, जीवन-जन्म सफल कर लीजे।
गुरु है सब देवन का देवा, भवसागर से लावें खेवा।
गुरु है अलख पुरुष अविनाशी, गुरु बिन कटे न यम की फाँसी।

साराश मे हम कह सकते हैं कि आपने उक्त आरती मे कहे गए सत्गुरु कबीर को ही अपना प्रभु रूप मे गुरु माना है।

जिस प्रकार साधना द्वारा ईश्वर की प्राप्ति तक पहुँचने के लिए आपने प्रत्येक वाणी में सत् की तोप का अवलम्बन लिया है उसी प्रकार प्रत्येक वाणी मे साधना

के प्रणेता सतगुरु का कृपाभावालम्बन ही उस सत् की तोप को साधे हुए है जिसका लक्ष्य केन्द्रित है मूल बिन्दु पर। इसलिए वाणी के अन्त में गुरु के प्रति 'घीसा सन्त शरण सतगुरु की···' पूर्ण समर्पणभाव आत्यन्तिक महत्ता का विषय है। और हो भी क्यो नही। जहाँ गुरु सर्व प्रकारेण समर्थ है। गुरु अपने शिष्य के हृदय मे भ्रम रूपी अन्धकार का निरसन कर ज्ञान रूपी प्रकाश पुञ्ज आलोकित करता है।" मन के तीनों तापो को शमित कर शरीर को निर्मल करता है।" माया मोह के बन्धनो मे ग्रसित गन्दे पिण्ड को अपनी असीम कृपा से गन्धमय करता है।" बिना गुरु की कृपा के मूर्ख लोग बाहर तीर्थादि स्थानो मे भटकते फिरते हैं परन्तु गुरु की कृपादृष्टि से इसी तन मे ईश्वर के दर्शन सुलभ हो जाते हैं। वह साहेब ठीक उसी प्रकार घट-घट मे व्याप्त है जिस प्रकार एक शीशे के सहस्रो टुकडे होने पर भी प्रत्येक टुकडे म एक ही प्रतिमा के दर्शन होते हैं। अतः घीसा सन्त द्वारा सतगुरु के दरबार को सर्वाधिक महत्त्व देना समीचीन ही है। क्योकि सतगुरु की महिमा अनन्त है। अपरिमित है। गुरु अवढरदानी होता है। शिष्य जिस माया मोहिनी के चक्र म फँसकर ईश्वर का विस्मरण कर बैठता है गुरु उस ईश्वर से शिष्य का साक्षात्कार सहज ही करा देता है।" क्योकि माया गुरु के दरबार मे मजूरी करती है।" सत्य शब्द की अमोघ शक्ति से सतगुरु शिष्य को भवसागर से पार उतार देता है। शब्द की चोट से सतगुरु कौए को हस कर सकता है। किंबहुना शब्द की बूटी से सतगुरु असम्भव को सम्भव कर सकता है। यदि शिष्य पर सतगुरु की कृपा हो जाय तो शिष्य निहाल हो जाता है

> चोला धो डारा रे भाई म्हारे रीझे सतगुरु साईं।
> भाव भक्ति मे चोला सोध्या दया की आँच लगाई।
> पाप-पुण्य दो ईंधन झोंके सतगुरु खूब चढ़ाई।
> सतगुरु धुबिया धोवन लागे प्रेम शिला पर भाई।
> क्षिमा नीर में दिया झकोला दुरमत काट बगाई।
> जोग जुगत कर चोला धोया ज्ञान सफाई पाई।
> घीसा सन्त का चोला धोया अलख मिला घट माँही "

जाति-पाँति का खण्डन—निर्गुनिया सम्प्रदाय के आदि कवि सन्त कबीर ने जातिवाद के जहरीले दशो से ग्रसित हिन्दुओ को फटकारें पिलाकर समता का उपदेश दिया था। परन्तु कबीर के बाद निर्गुनिया सम्प्रदाय की लम्बी यात्रा के उपरान्त भी इस रूढिवादी विचार दुर्ग के खण्डहर पूर्णरूपेण ध्वस्त नही हो पाए थे। जातिवाद की चादर इतनी मैली और जीर्ण हो गई थी कि न तो वह उधेड़-कर दुबारा ही बुनी जा सकती थी और न किसी साबुन से साफ ही की जा सकती थी। यह बात किसी भी रूप म अस्वीकार नही की जा सकती है। इसको तो

समूल नष्ट करके ही जन मानस म समता का सचार किया जा सकता है। इस विचार से सर्वप्रथम सन्त घीसा साहब ने ही इस क्रान्ति का सेहरा अपने सिर पर बांधा और एक ब्राह्मण होते हुए भी जुलाहे का कारोबार प्रारम्भ कर लोगों म नई क्रांति का सूत्रपान किया। उनक लिए सभी प्राणी (मानव) हाड-मास क एक पुतले हैं। सबकी एक ही चमडी है। सबम एक ही राम हैं।[16] न कोई बडा है और न कोई छोटा, न कोई ब्राह्मण है, न कोई राजपूत, न कोई उच्च वर्ग का है, न कोई निम्न वर्ग का। आक्रोश म आकर घीसा सन्त ने लोगो को वह डॉट पिलाई कि उनकी जुबान बन्द हो गई। सन्त के पास यही कटु सत्य था, जिसमे वे कबीर से भी आगे निकल गए हैं

> जाट और भाट, भग लिंग के ही ठाट,
> ब्राह्मण और बनिया, भग लिंग के ही तणिया।
> जोगी और गुसाईं, भग-लिंग के ही भाई।
> लेना और देना, भग-लिंग से ही कहना।
> पीर और पैगम्बर, भग लिंग के ही दिगम्बर।
> जती और सती, भग लिंग की ही मती।
> घीसा हिन्दू और मुसलमान, भग लिंग केही जान।[17]

इसी कारण घीसा सन्त को निम्न वर्ग के लोग अपना भगवान् मानते हैं। जातिवाद के भूत से जिन लोगा को आपने मुक्त किया उनके लिए आप भगवान् नहीं तो और क्या थे!

बाह्याडबरों का विरोध—भारतीय सस्कृति का यह दुर्भाग्य ही कहा जायगा कि निर्गुण सम्प्रदाय की इतनी सुदीर्घ यात्रा के उपरान्त भी हिन्दू और मुसलमानों म मानवतावादी आदर्शों का अवलम्बन ले ऐक्य स्थापित न हो सका और श्री घीसा सन्त को पुन दोनो की विभिन्न मान्यताओ का खण्डन करने की आवश्यकता पडी

> राम खुदा एको है भाई, हदबो दो ठहराई।
> एक हिन्दू एक मुसलमान ये कैसी रौल मचाई।
> उनमे काजी उनमें पडित दोनो बडे बनाए।
> माया मोह मे भूल रहे हैं राम खुदा नहीं पाये।
> लालच खातर सॉंच न बोलें मर्म उन्हें नहीं पाया।
> *घर मे वस्तु बाहर बतलावें नाहक जग भरमाया।*

मन्दिर का घटा, मस्जिद की बांग, हिन्दुआ के वेद मुसलमानो का कुरान, हिन्दुआ के व्रत, मुसलमाना के रोजे,[18] मुसलमानो की हज और हिन्दुओ के तीर्थ[19] सब-कुछ मनुष्य को भटकाने के उपादान मात्र हैं उस घट घट वासी की प्राप्ति तो अपने तन मे ही हो जाती है

हिन्दू पूजें देहरा ये मस्जिद के माह।
यहाँ पत्थर यहाँ ईंट है राम-खुदा तन माह।
वेद कतेब झगड़ा पड़ा भूले दोनू दीन।
घीसा सन्त न्यू कहें भाई आपे ही में चीन।

हिन्दू के पडित और मुसलमान के काजी दोनो ही अपने को बड़ा समझते हैं परन्तु उन्हे यह पता नही कि दया क नाम पर दोनो के अनुयायी शून्य हैं। भला इस निर्दयता मे उन्हे राम और खुदा कैसे प्राप्त हो सकता है।" इसी प्रकार झोली लटकाकर घूमने वाले फकीर और साधु झूठे जजाल म फँसकर इस ससार को मूर्ख क्यो बनाते है।" यह उनका स्वाँग नही तो और क्या है। ये सब खण्डन मण्डन की प्रक्रियाएँ अपनी मस्ती में झूमता हुआ सन्त कर रहा था जिसने नई-नई परिभाषाओं द्वारा ब्राह्मणो साधुओ, पण्डितो आदि को नई दिशा दिखाकर उचित मार्गदर्शन किया

ॐ सन्तो पण्डित सोई जो पिंड को जाने।
निर्मल हिरदे वस्तु पिछाने।
क्षमा नीर में करें स्नाना।
मैल उतारे मान - गुमाना।
मन सालगराम को करते पूजा।
और न जाने जग मे दूजा।
सन्त तिलक मस्तक ही सोहै।
दुविधा, दुरमति दोनों खोवै।
दया जनेऊ गले जो राखे।
पाँच तत्व का भेद जो भाखे।
ब्राह्मण सोई जो ब्रह्म पिछाणे।
और
साधु सोई जो शब्द को चीन्हे।
जैसे तेली रुई को पीने।

साराशत हम कह सकते हैं कि घीसा सन्त सकीर्णता की विचार-परिधि से विमुक्त हो केन्द्र मे प्रदूषित सस्कारो, अडिग आडम्बरो और मैली कुचैली रूढियो तथा विषाक्त आचार शिराओ का एकत्रण कर सत्य की तोप से ज्ञान का पलीता लगाकर बूढी परम्पराओ की होली फूँक रहे थे और बुद्धिजीवी आत्मा को नवीन एव वैज्ञानिक विचार धारा का अनुसरण कराने हेतु नूतन दृष्टि दे रहे थे

ॐ सन्तो तनकर पोथी मनकर पडित,
बाँचत भर्म हुआ सब खण्डित।

जब ही दर्शा रूप अखण्डित।
तब ही किया ब्रह्म विचारा।
जाका कहिए वार न पारा।
दया ज्ञान का जोग पसारा।
क्षिमा तपन है सबसे न्यारा।
घीसा सन्त सरण सतुगुरु की,
दर्श पार्स और सहज दीदारा।

खड़ी बोली के प्रारम्भिक कवि

हिन्दी साहित्य के सुप्रसिद्ध इतिहासकार आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र (सन् १८५० ई०—सन् १८८५ई०) को खड़ी बोली के प्रथम कवि का श्रेय दिया है। उनके उपरान्त अनेक इतिहासकारो ने इसी मान्यता का समर्थन किया है। अब सुपुष्ट प्रमाणो से यह सिद्ध हो गया है कि भारतेन्दु जी खड़ी बोली मे 'पद्य लेखन' की ओर सन् १८८१ ई० मे उन्मुख हुए थे। अपनी खड़ी बोली की रचना 'भारत-मित्र' की प्रकाशनार्थ प्रेषित करते समय उन्होंने १ सितम्बर, १८८१ ई० को एक पत्र उसके सम्पादक के नाम इस प्रकार लिखा था—

"प्रचलित साधु भाषा मे कुछ कविता भेजी है, देखिएगा, इसमे क्या कसर है और किस उपाय के अवलम्बन करने मे 'इस भाषा' मे काव्य सुन्दर बन सकता है। इस विषय मे सर्व साधारण की राय ज्ञान होने पर आगे से वैसा परिश्रम किया जायगा। तीन भिन्न-भिन्न छन्दो मे यह अनुभव करने ही के लिए कि किस छन्द में इस भाषा का काव्य अच्छा होगा, कविता लिखी है, मेरा चित्त इससे सन्तुष्ट न हुआ और न जाने क्यो व्रजभाषा से मुझे इसके लिखने मे दूना परिश्रम हुआ, इस भाषा की क्रियाओ मे दीर्घ मात्रा विशेष होने के कारण बहुत असुविधा होती है। मैंने कहीं-कहीं सौकर्य के हेतु दीर्घ मात्राओ को भी लघु करके पढने की चाल रखी है। लोग विशेष इच्छा करेंगे, तो मैं और भी लिखने का यत्न करूँगा।" उस समय की भारतेन्दु जी की खड़ी बोली मे सर्जित कविता का उदाहरण इस प्रकार है :

चूरन अमल बेद का भारी
जिसको खाते कृष्ण मुरारी।
मेरा पाचक है पचलोना
जिसको खाता श्याम सलोना।
चूरन बना मसालेदार
जिसमें खट्टे की बहार।"

उपर्युक्त पत्राश से अभिज्ञात है कि भारतेन्दु बाबू खडी बोली की काव्य-सर्जना करने मे काफी परेशानी अनुभव कर रहे थे। इनके अतिरिक्त, तत्कालीन अन्य विद्वान् भी सभा करके यह निष्कर्ष निकाल चुके थे कि खडी बोली मे पद्य-सर्जना असम्भव है। इन विद्वानो मे डॉ० ग्रियर्सन, श्री प्रतापनारायण मिश्र, श्री शिवनाथ शर्मा, तथा भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र आदि के नाम स्मरणीय हैं। पुष्कल प्रमाण के लिए डॉ० ग्रियर्सन के पत्र, जो श्री अयोध्याप्रसाद खत्री को लिखे गए थे, द्रष्टव्य है [११]

(अ)

I have recived your 'Kharı Bolı Ka Padya' and your letter Asking for an opınıon of ıt I regret no crıtıcısm of mine can be of use to you as I am strongly of opınıon that all attemprts at wrıttıng poetry ın Kharı Bolı must be unsuccessful The matter was fully dıscussed some *years ago by Babu Harıshchandra of Banaras and I* consıder hıs arguments convıncıng

(Sd) G A Grıerson
६ सितम्बर १८८७

(ब)

Deer Sır

I have recived a copy of your 'Kharı Bolı Ka Padya' It ıs very nıcely prınted, but I regret that I can not agree wıth yours Conclusıons I thınk as a great pıty that so much labour and money has been spent upon on ımpossıble task

(Sd) G A Grıerson
६ फरवरी १८६०

अत जिस समय स्वनामधन्य इतिहासकार भारतेन्दु बाबू को खडी बोली का प्रथम कवि उद्घोषित कर रहे थे, उस समय तक प्राप्त तथ्यो के आधार पर इस प्रकार की मान्यता असमीचीन भी नही कही जा सकती थी, परन्तु नवीन अन्वेषणो स इतिहासकारो के सम्मुख अनेक ऐस महत्त्वपूर्ण तथ्यो का उद्घाटन हुआ, जिससे यह उदघोषणा पुरातन प्रतीत होने लगी, आचार्य क्षेमचन्द्र 'सुमन' ने हिन्दी जगत् के सामने सन्त कवि गगादास (सन् १८२३ ई०—सन् १६१३ ई०) और शकरदास (सन् १८२३ ई० —सन् १६१२ ई०) को खडी बोली के प्रारम्भिक कवियो के रूप मे लाकर खडा कर दिया और हिन्दी-साहित्य के इतिहास मे नया चमत्कार दिखाया तथा सन्त गगादास और शकरदास को खडी बोली की

प्रारम्भिक कवि सिद्ध करने के लिए उन्होने पुष्ट प्रमाण प्रस्तुत किये हैं। उन्होंने लिखा है "भारत मे जब राष्ट्रीयता का नवजागरण हो रहा था, तब खडी-बोली हिन्दी के माध्यम से यहाँ के रचनाकारो ने अपनी भावनाओ का प्रकटीकरण करके देश को एक सर्वथा नई दिशा दी थी। हमारी तो ऐसी भी मान्यता है कि भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र से बहुत पहले मेरठ जनपद के प्रख्यात सन्त कवि गगादास ने खडी बोली मे रचना करके हिन्दी का जो स्वरूप प्रदान किया, वही बाद मे विकसित होकर हिन्दी काव्य का शृगार बना। आश्चर्य है कि हिन्दी के स्वनामधन्य इतिहासकारो की दृष्टि म इस सन्त कवि का काव्य कैसे ओझल रहा? भारतेन्दु के काव्य क्षेत्र म पदार्पण करने से पूर्व ही गगादास ने अपने पदो म खडी बोली का जो परिनिष्ठित स्वरूप प्रस्तुत किया था, वह समस्त हिन्दी-जगत् के लिए एक आदर्श उदाहरण प्रस्तुत करता है। एक उदाहरण

सजम का कर थाल लिया है,
ज्ञान का दीपक बाल लिया है,
तप-घण्टा तत्काल लिया है।
धूप करी निष्काम की,
मनै अनहद शख बजाया।
पूजा करके आतमाराम को,
मनै परमेश्वर पति पाया।"[३६]

एक ओर जहाँ आचार्य क्षेमचन्द्र 'सुमन' की उक्त मान्यता ने हिन्दी जगत् मे एक नव्य कीर्तिमान स्थापित किया, दूसरी ओर यहाँ यह बात भी विशेष रूप से उल्लेख्य है कि सुमनजी ने जिस समय इस नवीन मान्यता द्वारा साहित्य-जगत् मे नयी क्रान्ति का श्रीगणेश किया था, उस समय तक भी एक और महान् सन्त कवि की काव्य-साधना साहित्यकारो की दृष्टि से ओझल थी।

"खडी बोली हिन्दी के गढ मेरठ जनपद की साहित्यिक चेतना का हिन्दी-साहित्य के इतिहास मे वही स्थान है जो भारतीय स्वाधीनता-सग्राम के इतिहास मे यहाँ से उद्भूत अठारह सौ सत्तावन की क्रान्ति का था। यदि हम यह कहें, तो कोई अतिशयोक्ति न होगी कि जिस प्रकार भारत की स्वाधीनता का द्वार मेरठ की बलिदानी भावना से उद्घाटित हुआ, उसी प्रकार राष्ट्रभाषा हिन्दी के उन्नयन तथा विकास मे भी यहाँ के साहित्यकारों की देन कम महत्त्व-पूर्ण नही।"[३७] इन दोनो पृष्ठभूमियो पर अपनी क्रान्ति के अकुर का रोपण करने वाले, सन् १८५१ ई० की क्रान्ति की भविष्यवाणी कर बहादुरशाह जफर को सचेत करने वाले तथा मेरठ जनपद म भक्ति पदो मे प्रतीक-योजना के माध्यम से जनमानस मे क्रान्ति की चेतना का सचार करने वाले महाकवि सन्त घीसा साहब (१८०३-१८६८) का नाम बडे गौरव के साथ स्मरणीय है। इनका

समता ममता बाहर बिराजें, सुरत रंगीली भीतर गाजे।
सुरत रंगीली करें बहारा, पी का रूप लखे हैं सारा॥
—सन्त भीखा साहेब, श्री ग्रन्थ साहेब, पृष्ठ ३, वाणी

९. ज्यू कस्तूरी मृग रहे भर्मत फिरे हजार।
बिन सतगुरु पावे नहीं जन्म धरो सौ बार।
—उपरिवत्, पृष्ठ

१०. सकल शरीरों रम रहे अवगत सत कबीर।
सतरूप सतगुरु मिले नीर क्षीर के तीर॥

११. डॉ० नीलम रानी, 'श्री भीखा सन्त का जीवन चरित', पृष्ठ १०८

१२. भीखा मोहे सतगुरु ऐसे मिले जैसे सूरज आकाश।
मर्म अन्धेरा मेट के ज्ञान किया प्रकाश।
—उपरिवत्, पृष्ठ १, वाणी १

१३. भीखा मोहे सतगुरु ऐसे मिले जैसे दरिया नीर।
मन की तपन बुझाय के निर्मल किया शरीर।
—उपरिवत्, पृष्ठ १, वाणी २

१४ भीखा ये माया के फंद हैं या में हो रहा धन्ध।
मैरा गन्दा पिंड था सतगुरु करी सुगन्ध।
—उपरिवत्, पृष्ठ १, वाणी ३

१५. भीखा सतगुरु के दरबार में जाइये बारम्बार।
भूली वस्तु लखायदें ऐसे हैं दातार।
—उपरिवत्, पृष्ठ १, वाणी १०

१६. भीखा सतगुरु के दरबार मे माया रहत हजूर।
जैसे गारा राज कू भर-भर देत मजूर।
—उपरिवत्, पृष्ठ २, वाणी १३

१७. उपरिवत्, पृष्ठ ११, वाणी २६

१८. हाड मांस का पूतला सबका एको चाम।
आपोंई घट घट बोलता बोलै एकोई राम।
—उपरिवत्, पृष्ठ ३, वाणी २३

१९. —उपरिवत्, पृष्ठ १४, वाणी ७५

२०. तीस रोजे करें पाँच नवाज पढ़ें मन में साच जरा नाहीं।
कहें भीखा सन्त ये खुदा की मार पडी है खुदा कू जानता जरा नाहीं।
—उपरिवत्, पृष्ठ १७, वाणी २१

२१ (अ) तीर्थ व्रत धर्म सब मन के धोखे मे रह जाते हैं।
पत्थर पापी पूजत फिरते ये सब खेल-तमाशे हैं।
—उपरिवत्, पृष्ठ १५, वाणी ३

२२. माता के गल नहीं जनेऊ पूत कहाये पांडे।
बीबी के तो सुन्नत नाहीं काजी पंडित मांडे।
हिन्दू की दया मेहर तुरक की दोनों घट से त्यागी।
वे हलाल वे झटका मारें आग दोऊ घर लागी।
—उपरिवत्, पृष्ठ, १९, वाणी २४

२३ (अ) साधो साध साग ना भावे। बाना पहर लजावे।
कंठी बाँधे तिलक चढ़ावे सिर पै टोपी पावे।
इस बाणे ने जग ठग खाया पकड़के जम के आवे।
कठा पहर हाथ ले झोली घर घर अलख जगावे।
बचे धून दाम ही जोड़ें हर का चोर कहावे।
बाहर भेख देख ना मन की मान बड़ाई चाहे।
इन बातों से नफा नहीं है जम का सोटा खावै।

—उपरिवत्, पृष्ठ २८, वाणी ८६

(आ) मूँड मुँडाये बहु तक फिरते अंग लपेटें छारा।
इतने हिरदे नाम नही है झूठ मर्म जिजारा।

—उपरिवत्, पृष्ठ २५, वाणी ३७

२४ आचार्य क्षेमचन्द्र 'सुमन', 'दिवगत हिन्दी सेवी (भाग १) पृष्ठ १५२
२५ आचार्य शिवपूजनसहाय 'खत्री-स्मारक ग्रन्थ', पृष्ठ ८५ ८६
२६ आचार्य क्षेमचन्द्र सुमन, दिवगत हिन्दी सेवी (भाग १) पृष्ठ १५१
२७ आचार्य क्षेमचन्द्र सुमन, मेरठ जनपद की साहित्यिक चेतना' पृष्ठ ४१
२८, आचार्य क्षेमचन्द्र 'सुमन, 'दिवगत हिन्दी सेवी (भाग १) पृष्ठ १९६

४

सन्त जीतादास : जीवन-वृत्त एव विचार-धारा

इनका जन्म भी मेरठ जनपद के खेक्डा नामक ग्राम[1] मे सन् १८०३ ई० मे हुआ था। इनके पिता का नाम श्री उदयराम था, जो जाट-परिवार के एक अच्छे जमीदार[2] थे। इसीलिए ग्रामवासी उन्हें आदर के साथ नम्बरदार कहा करते थे। आपकी माता श्रीमती भागोदेवी[3] बडी उदारमना थीं। आपके चार भाई और थे, जो आपसे बडे थे। आप सबसे छोटे होने के कारण माँ के सबसे लाडले थे अत आप अधिक स्नेह के कारण अपनी माँ को न छोड सके और अशिक्षित[4] ही रह गए। आपका स्वभाव अक्खड था। इसी अक्खडपन के कारण आपने सन्त घीसा साहब की दो एक बार उपेक्षा भी की थी परन्तु यह बात आपके शिष्यत्व ग्रहण करने से पहले की है। जब सन्त घीसा साहब (सन् १८०३) आपके ही ग्राम खेक्डा मे अवतीर्ण हो चुके थे तो सर्वप्रथम माना नम्बरदार के अतिरिक्त आपके भतीजे श्री सुखलाल भी सन्त घीसा साहब के प्रेमी भक्तो म थे। सन्त घीसा साहब की नूतन मान्यताओ से परिपूर्ण विचार-धाराओ से ग्रामवासी अचम्भित ही नही अपितु अपनी बूढी रूढियो की रक्षा कर पाने मे भी आशकित थ। अत अशिक्षित नम्बरदार जीता ने पचायत करके सन्त घीसा साहब को ग्राम से बाहर निकालने को कहा। इतना ही नही नम्बरदार जीता (सन्त जीतादास) ने यह चुनौती भी दी कि यदि आप लोग उसे बाहर नही निकालेंगे तो मैं स्वय निकालूंगा।

एक दिन जब जीता नम्बरदार सन्त घीसा साहब को ग्राम से बाहर निकालने के लिए गया तो उस समय सत्सग चल रहा था। वहाँ जीता का भतीजा सुखलाल भक्त भी बैठा था। जीता नम्बदार को देखकर सन्त घीसा साहब ने पूछा कि यह कौन है। तब सुखलाल भक्त ने बताया कि यह मेरा चाचा जीता है। यह सुनकर सन्त ने कहा कि यह तो हमे भी जितावेगा। और

फिर जीता नम्बदार से भी घीसा सन्त ने कहा कि तू हमें क्या निकालेगा मैं ही तुझे इस ग्राम से निकाल दूँगा तब मैं निकलूँगा।

अगले दिन दोपहर के समय एक घटना और घटित हुई। दोपहर को रोटी खाकर जब जीता श्रीप्रताप ब्राह्मण की चौपाल पर गया तब वहाँ उनके शिष्य सन्त घीसा साहब की चर्चा कर रहे थे। उस ब्राह्मण ने सभी शिष्यों को ताड़ना दी कि महापुरुषों की निन्दा नही किया करते, जैसे मथुरा मे श्रीकृष्ण ने अवतार लिया था ठीक उसी प्रकार से ये अवतरित हुए हैं। साथ ही श्रीप्रताप जी ने जीता नम्बरदार को भी उसकी निन्दनीय घटनाओं के लिए सन्त घीसा साहब से क्षमा-याचना करने को कहा। तभी जीता नम्बदार सन्त घीसा साहब के पास चल दिया और साष्टांग नमस्कार करके सन्त के आगे बैठ गया। परिवार के व्यक्तियों द्वारा समझाने पर भी जब वह नही हटा तब सन्त घीसा साहब ने उसकी स्तुति स्वीकार कर उसे भेष दे दिया। यहाँ यह बात उल्लेखनीय है कि जीता नम्बरदार ने ही सन्त घीसा साहब से सर्वप्रथम भेष ग्रहण किया था और सन्त घीसा साहब ने बड़े स्नेह के साथ इनका नाम रखा था जीतादास। उस समय इनकी आयु २५ वर्ष थी तब इनकी माँ का देहान्त हो चुका था और उन्हें सन्त घीसादास के चरणो मे आकर सन्तुष्टि मिल गई थी तथा उनकी वैराग्य वृत्ति को ईश्वर-साधना एवं गुरु सेवा का पूर्ण सुअवसर मिल गया था। उस समय सन्त घीसा साहब के अन्यतम भक्त नानू सन्त थे जिनके घर पर उनका सत्सग जमता था। अत ग्राम निवासियो ने जीतादास के भेष ग्रहण करने का मूल कारण नानू सन्त को ही समझा। जीता जैसे नम्बरदार को खोकर खेकड़ा के समीपवर्ती आदि नवग्रामो के ब्राह्मणो को अपनी आजीविका का खतरा उत्पन्न हो गया था, क्योंकि अपने यजमान जीता से उन्हें काफी धन की प्राप्ति होती थी। अत उन ग्रामो के ब्राह्मणो ने नानू भक्त के द्वार पर चिता जलाकर स्वय जलकर ब्रह्म-हत्या करने की धमकी दी और जीतादास से कहा कि तू ग्राम का नम्बरदार होकर भी इतना बिगड़ गया है। तब सन्त जीतादास के मुख से अचानक ही एक मधुर पद इस प्रकार निकाला था :

'मेरे मन माना सत गुरु का नाम।'

ब्रह्म-हत्या से भयभीत एवं दुखित लोगो ने नानू भक्त से कहा कि अपने गुरु से कह दो वे ग्राम छोडकर अन्यत्र चले जायें। फलस्वरूप सन्त घीसा साहब अपने शिष्य जीतादास को लेकर बागपत के निकट यमुना के किनारे खण्डावनी मे चले गए। तब उनके साथ उनका भक्त मानदास भी था। उस रात को वे निराहार ही रहे थे। सुबह होते ही सन्त जीतादास ने गुरु से भिक्षा माँगकर लाने का आदेश चाहा। परन्तु उन्होंने यह कहकर कि अभी कबीर साहब का भण्डारा नहीं खुला है टाल दिया। अगले दिन कुछ सेठ, साहूकार कई प्रकार

के भोज्यपदार्थ ले आए। अब आपकी प्रसिद्धि इतनी दूर-दूर तक फैली कि खेकड़ावासी भी उससे अपरिचित न रहे। परिणामत सभी खेकडावासियो ने नानू भक्त से अनुरोध किया कि वह सन्त घीसा साहब को वापस ले आवें। उन्होंने अनुरोध स्वीकार कर ऐसा ही किया। अब वहाँ पर फिर से सत्सग जमने लगा। सन्त घीसा साहब के शिष्यो की सख्या धीरे धीरे बढ़ने लगी। अपने भक्त मानदास को सन्त घीसा साहब ने आज्ञा दी कि मुडालो की पट्टी की जो जगह खाली पडी है उसे घेर कर वहाँ एक सत्सग का स्थान बनाओ। इतना सुनकर मानदास ने सारी जगह की खाई खुदवा दी। उस समय सभी लोगो ने सन्त घीसा साहब से कहा कि इतनी जगह का क्या करोगे ? यह तो काफी है। तब उनका उत्तर इस प्रकार था "यहाँ लक्खी मेला लगा करेगा और काशी के बिछुडे हस यहाँ आया करेंगे। यहाँ तो केवल तवा ही आ पायगा।' इस छत्री की नीव और इसका निर्माण सन्त जीतादास ने स्वय अपने पैसे से कराया था। जीतादास सन्त घीसा साहब के अत्यन्त निकट के शिष्य बन गए थे। इसी कारण सन्त घीसा साहब उन्हें हमेशा अपने साथ रखा करते थे। गुरु के आदेश को शिरोधार्य मान कर जीतादास अपने ग्राम मे, भिक्षा माँगने लग गए थे।' धीरे-धीरे जब जीतादास के पास भी सत्सगियो की सख्या बढने लगी तो सन्त घीसा साहब ने उन्हें बाहर जाकर अपने पन्थ का प्रसार करने के लिए कहा। गुरु के आदेश का पालन करने के लिए सन्त जीतादास सर्वप्रथम ग्राम खेडा हटाणा मे चले गए। ध्यातव्य है कि इस ग्राम मे सन्त जीतादास की ननिहाल भी थी। अत वे अपने मामा के यहाँ ठहरे। वहाँ रामदत्त और रामसाह भी उनके अनन्य भक्त हो गए। तदुपरान्त खेडा हटाना मे जाकर हरचन्द जाट पर अपनी प्रतिभा की छाप छोडकर उन्होने उसे भी अपने भक्तो की शृखला म संयोजित कर लिया। उस समय जीतादास वायु विकार से ग्रसित हो गए थे अत वे भुनी हुई हर्रे की गोलियाँ खाते थे, कभी-कभी माँगने पर इन गोलियों को वे अन्य लोगो को भी दे दिया करते थे। अत लोगो मे यह प्रवाद बडी तीव्र गति से फैल गया कि भागो का लडका काली काली गाँठ रखता है। यहाँ पर सन्त जीतादास ने एक और चमत्कार दिखाकर लोगो को चकित कर दिया। कुछ लोगो ने ग्राम सरूरपुर से नत्थू पडित को शास्त्रार्थ कराने के लिए सन्त जीतादास के सामने बुलाया। नत्थू पडित जिस समस्या को सन्त जीतादास के सामने रखने वाले थे, वे उस समस्या पर पहले से ही विचार कर रहे थे। यह देखकर नत्थू पडित भी उनके शिष्य हो गए। इस प्रकार घीसा-पन्थ का प्रचार और प्रसार करते हुए एक बार सन्त घीसा साहब अपने शिष्य जीतादास के साथ करनाल जनपद के ग्राम कुराड में भी गए थे। यहाँ के भक्तो मे जुहारा, चैनसुख और नन्दू के नाम उल्लेखनीय हैं। निकट म ही स्थित ग्राम मुराणा का एक ठाडा नामक जाट सन्त घीसा साहब

ा यश सुनकर वहाँ गया था और उसने सन्त जीतादास को अपने ग्राम मे ले
ाने का अनुरोध किया था।" ग्राम मुराणा मे आकर सन्त जीतादास ने एक
मकान निश्चित कर लिया था, जिसमे नियमित रूप से सत्संग जमता था। यहाँ
र भी सन्त जीतादास के अनेक शिष्य हो गए जिनमे से तेजा, जोराम और
मोहरा जाट के नाम मुख्य हैं। यहाँ पर आप ६ वर्ष तक रहे थे। दुर्भाग्यवश सन्
१८६८ ई० की *मार्गशीर्ष सुदी दशमी को सन्त घीसा साहब सत्यलोकवासी*
हो गए और घीसा पन्थ की बागडोर उनके दो महान् शिष्यों के हाथ मे रह गई,
जिनमें से एक थे सन्त जीतादास और दूसरे थे सन्त नेकीराम। सन्त नेकीराम ने
जहाँ घीसा पथ का प्रचार-प्रसार अपने प्रवचनो द्वारा किया वहाँ सन्त जीतादास
ने स्वय को गुरु-चरणो मे अर्पित करके उनकी वाणियो द्वारा साधक के रूप
मे गुरु के द्वारा सस्थापित पन्थ (घीसा पन्थ) को व्यापक रूप प्रदान किया और
सन् १८८८ ई० मे स्वय भी इस नश्वर जगत् को छोडकर सत्यलोकवासी हो
गए।

उपलब्ध साहित्य—घीसापन्थी साहित्य मे सन्त जीतादास के मुखारविन्द
से निस्सृत १८००० वाणियो का उल्लेख किया गया है। परन्तु अब तक लिखित
रूप मे उपलब्ध वाणियो, पदो और शब्दो की सख्या लगभग सवा तीन हजार है।
यहाँ यह बात उल्लेखनीय है कि एक पद मे कई-कई वाणियों का सहारा लिया
गया है जबकि उस पद की टेक एक ही है। अत हो सकता है कि घीसापथी भक्तों
ने एक पद के स्थान पर उसमे समायोजित वाणियो की सख्या को अधिक महत्त्व
दिया हो। आपकी सम्पूर्ण वाणी ५७ अगो मे विभाजित है। निर्गुण धारा मे प्रवा-
हित अन्य सन्त कवियो मे केवल सन्त कवि नित्यानन्द ही ऐसे हैं जिन्होने अपनी
वाणियो को अत्यधिक अगो मे विभाजित कर जनमानस का मार्ग-निर्देशन किया।
अत अग-विभाजन के दृष्टिकोण से आपका भी कम महत्त्व नही है। आपकी
वाणियो का अग एव सख्या-विभाजन इस प्रकार है—अथ गुरुदेव का अग (१०६),
अथ सुमरण का अग (६३), अथ-विचार का अग (४८), अथ मन का अग (८२),
अथ माया का अग (६८), अथ सूरे का अग (१७), अथ चितावनी का अग (८),
अथ स्वार्थ का अग (११), अथ पीव पिछाणी का अग (१५), अथ दीनता का
अग (१०), अथ समझे घर का अग (२२), अथ मीनती का अग (१५),
अथ भगती का अग (५), अथ लोभ का अग (१४), अथ आन देव का अग
(१४), अथ पतिव्रता का अग (५२), अथ जीवन मृतक का अग (५०), अथ
पारख का अग (५६), अथ मुसलमानी का अग (४३), अथ ब्रह्मज्ञानी का अग
(४३), अथ समर्थ का अग (४१), अथ मोह का अग (८२), अथ शील का
अग (६०), अथ जरना का अग (५०), अथ विरह का अग (६३), अथ
ज्ञान विरह का अंग (३५), अथ निंदक का अग (३६), अथ स्वार्थ का अंग

(२६), गुरु निर्दोपिता का अंग (१०५), अथ साच का अंग (५२), अथ उपदेश का अंग (११०), अथ सर्व व्यापक का अंग (६३), अथ वैराग का अंग (५५), अथ भेदी नर का अंग (५३), अथ साधु का अंग (३०), अथ कलियुगी साधु के अंग (२४), अथ प्रार्थना का अंग (२८), अथ प्रेम का अंग (३३), अथ परमार्थ का अंग (११), अथ गुरु शिष्य गुष्ठि का अंग (१७), अथ गुरु शिष्य गुष्ठि (१), अथ मंगल प्रकरण (३४), अथ रेखते (३६), अथ सीठणा (५), अथ होरी (२१), अथ रंग सारंग (८), अथ शब्द हेली (६), अथ राग बंगला (३), अथ रमैणी (१९), अथ चरखे (६), अथ झूलने (६६), अथ पढने की वाणी (१३२), रमैणी (११७), अथ कलमे (४), आरती (८), अथ भक्तमाल (१), अथ शब्दावली (८८५), इस प्रकार कुल ५७ अंगों में ३१२७ वाणी, पद और शब्द प्राप्त हुए हैं।

विवेचना—सन्त जीतादास की विवेचना का स्यन्दन पौराणिक साक्ष्य, मधुर अभिव्यक्ति, प्रियतम रूप मे ईश्वर-वर्णन और उलटबाँसियो के चार पहियो पर गतिशील है। जिसे अंगों में विवेचित गुरु भक्ति, सुमरण, सतीत्व, शील, जरना, साँच, प्रेम, परमार्थ मंगल जैसी सद्वृत्तियो और माया, स्वार्थ, लोभ, मोह, निन्दा, काम, अहंकार-जैसी विकृतियों के अश्वो द्वारा जोता जा रहा है। जिनकी लगाम सन्त जीतादास ने स्वयं अपने हाथों मे ले रखी है। जिन्होंने सद्वृत्तियो के अश्वो को उन्मुक्त छोड़ दिया है और विकृतियों के अश्वो की लगाम कसकर पकड रखी है। तिस पर भी उनके ऊपर साँई घीसा सन्त की महत् अनुकम्पा है। भला फिर सत्मार्ग पर गतिमान उनके स्यन्दन को कौन रोक सकता है।

(अ) पौराणिक साक्ष्य—सन्त जीतादास ने सत्य के महत्त्व की सार्थकता सिद्ध करने के लिए लोकजीवन में प्रचलित पौराणिक कथाओ का अवलम्बन लिया है जो पारिवेशिक दृष्टिकोण से समीचीन ही था। वे इस बात से सुचारुरूपेण भिज्ञ थे कि जनजीवन की विचारधाराओ को एक साथ विलोम प्रतिपादन द्वारा सर्वथा नूतन दिशा में नही मोडा जा सकता। क्योकि यह क्षेत्र प्राचीन काल से ही पौराणिक गाथाओ की ऐतिहासिक भूमि रहा है। भला इसी क्षेत्र मे सारी मान्यताओ की उपेक्षा कहाँ तक सम्भव सिद्ध की जा सकती थी। अतः एक ओर जहाँ सन्त जीतादास ने सत्य," भक्ति," जरना और सुमिरण के महत्त्व को सिद्ध करने के लिए पौराणिक कथाओं का अवलम्बन लिया दूसरी ओर वहाँ उन्होने काम", अहंकार" और गर्व की निकृष्टता को सिद्ध करने के लिए भी पौराणिक साक्ष्यों की उपेक्षा नही की है। इन दोनो प्रकार की सिद्धियों के लिए प्रह्लाद का उद्धार करना, हिरणाकुश का संहार करना, मोरध्वज का पुत्र चीरना, मीरा का जहर का प्याला पीना, द्रौपदी के चीर का बढ़ना, कृष्ण

की कंस पर, पाण्डवो की कौरवो पर, राम की रावण पर आदि विजयश्री, शिव द्वारा भस्मासुर का भस्म करना, नारद, काकभुशुण्डि, काली नाग का दमन, गणिका, अजामिल, भीलनी और अहिल्या प्रभृति का उद्धार, हरिश्चन्द्र, गोपीचन्द, भर्तृहरि, धन्नाजाट, नरसी की भक्ति आदि से सम्बन्धित पौराणिक कथाओं की स्वर्णिम आधार शिला पर भक्ति के भव्य महल का निर्माण किया सन्त जीतादास ने।

(आ) पदों का माधुर्य—दार्शनिक विचारो के नीरस धरातल पर सन्त जीतादास ने अपनी कवित्व-प्रतिभा के बल पर ऐसे मधुर पदो की रचना की है जिनसे भक्त के हृदय मे स्वरमयी वीणा झकृत हो उठती है और भक्त का हृदय भक्ति के अगाध सागर म तरगित होने लगता है। उदाहरण दर्शनीय है

काया कूप मे अह्मनीर है, बिन नेजू कैसे भरिये ?
सुरति नेजू करनी का करवा, प्रेम शब्द से भरिये ॥
भर भर पैहुडे लियावै शील पं अपने सिर नहीं धरिये।
पीवत तप्त मिटै तन मन की ऐसा निरख गुरु करिये ॥
जो पीवै सो मिटे तृष्णा बौहड जन्म नहीं धरिये।
धीसा सन्त कहै सुन जीता बुरे कर्म से डरिये ॥

(इ) ईश्वर प्रियतम के रूप मे—भक्ति पदों को मधुर और प्रिय बनाने के लिए सन्त जीतादास ने लोकजीवन के वातायन से झाँककर शृगारिक मच पर परिणयमग्न प्रियतम और प्रेयसी के माध्यम स ईश्वरीय साधना के मार्ग को स्पष्ट करने की भी पद्धति अपनाई है। यद्यपि ऐसी पद्धति सन्त सम्प्रदाय म पुरातन ही है परन्तु फिर भी आपकी वाणियो म अनुसरण की तनिक भी गन्ध नहीं है। इससे सिद्ध होता है कि इस प्रकार के छन्दो का सृजन आपने स्वय की प्रतिभा के सशक्त धरातल पर ही किया है।" भक्त स्वय को नारी मानकर प्रियतम (ईश्वर) के ऐसे देश म जाने के लिए आतुर है जहाँ से वापस आने का उसे मोह भी नही है जहाँ ज्ञान का दीपक अपनी अक्षुण्ण ज्योति से प्रकाश्यमान है वहाँ हिन्दू और तुरक जैसी साम्प्रदायिक दीवारें नही हैं। यह भक्त रूपी नारी अपने उस अलेख प्रियतम" को पाकर ही सुहागिन कहलायगी अन्यथा इस नारी का जीवन निरर्थक ही है।"

(ई) उलटबाँसी प्रयोग—विरोधी कथनो के औचित्यपूर्ण प्रयोग द्वारा सन्त कवि श्रोता के हृदय मे बलवती उत्कठा जाग्रत करने मे सफल सिद्ध हो जाते हैं क्योंकि ऐसी उलटवासियो का श्रोताओं पर आश्चर्यजनक प्रभाव पडता है जिससे श्रोता के मानस मे उसका अर्थ जानने की जिज्ञासा उद्यत हो उठती है। सन्त जीतादास ने भी आध्यात्मिक साधना और दार्शनिक सिद्धातो को उलट बांसियो के माध्यम से प्रस्तुत करके आध्यात्मिक-विचारगर्भित काव्य की सर्जन

में अपनी मर्मज्ञता का परिचय दिया है। वैसे आपकी वाणियों में दो उलटबाँसियाँ ही प्राप्त हुई हैं।

भाषा—सन्त जीतादास बिलकुल पढ़े-लिखे नहीं थे, अत. उनकी सारी वाणियाँ कौरवी भाषा में लिखित हैं। हाँ, कुछ वाणियाँ अवश्य ऐसी हैं जिनके उदाहरण परिष्कृत खड़ी बोली के रूप में दर्शनीय हैं। अत सन्त घीसा साहब के उपरान्त खड़ी बोली के कवि के रूप में द्वितीय स्थान का श्रेय सन्त जीतादास को दिया जा सकता है। अब प्रश्न यह उठता है कि सन्त जीतादास ने सभी वाणियों की सरचना खड़ी बोली में क्यों नहीं की। इसका मूल कारण सम्भवत उनका अनपढ़ होना ही कहा जा सकता है। फिर भी अपढ़ होते हुए भी खड़ी बोली में पद-सरचना के परिमार्जित रूप का जो परिचय उन्होंने दिया है निश्चय ही उस परिचय के लिए खड़ी बोली के इस कवि को गौरव प्रदान करना चाहिए। बानगी इस प्रकार है :

बिन बादल जहाँ बिजली चमके, दिवला बले बिन तेल।
बिन सतगुरु कोई लख नहीं सकता सुरत निरत का मेल।
प्रेम प्रीत का तार लगाया सुमति नाम करी रेल।
इसी रेल में हस बिठा के दिया अगम कूँ पेल।[१८]

विचार-धारा—सन्त जीतादास को सन्त घीसादास जैसे मतिमान गुरु का शिष्यत्व प्राप्त हुआ था जिन्होंने गुरु को सर्वोपरि महत्त्व प्रदान किया था। ऐसे गुरु से ज्ञान प्राप्त करके भला सन्त जीतादास गुरु महिमा का प्रतिपादन किये बिना कैसे रह सकते थे। सन्त जीतादास ने साधना की पावन थाली में अपनी वाणी और पदो के नैवेद्य को परम गुरु-भक्ति का स्मरण कर अर्चनीय गुरुदेव सन्त श्री घीसा साहब के चरण कमलों में अगाध श्रद्धाभाव के साथ अर्पित किया है। गुरु-महत्त्व को सिद्ध करने के लिए इन पुष्कल प्रमाणो से बढ़कर और क्या साक्ष्य हो सकता है। यहाँ यह स्वीकार्य है कि इस प्रकार के नैवेद्य का समर्पण उनकी स्वय की गुरु-भक्ति की अनुभूति हो सकती है फिर भी जन सामान्य को गुरु-महिमा का महत्त्व आपने 'अथ गुरुदेव का अग' शीर्षक से किया है। इसके अतिरिक्त आपकी वाणियों में और सुमिरण का महत्त्व, बाह्याडम्बरो का खण्डन, जाति-पाँत का विरोध तथा कबीर का सर्वव्यापकता का स्वर प्रबल रूप से मुखरित हुआ है।

गुरु-महिमा—आपके दृष्टिकोण में सतगुरु की महिमा असीम है। गुरु सुख के सागर हैं। यह ससार दु ख का दरिया है। गुरु की शरण में जाने से इस दु ख के ससार में भी अद्‌भुत बहार आ जाती है।[१९] जो शिष्य सतगुरु के चरणों में अपने को पूर्णरूपेण अर्पित कर देता है, उसके सम्पूर्ण दुखो की समाप्ति हो जाती है।[२०] जो शिष्य सतगुरु की आठो पहर वन्दगी करते हैं। सतगुरु उस पर कृपालु

होकर उन्हें चौरासी योनियो के जंजाल से मुक्त करा देते हैं और उन्हें अमर लोक की प्राप्ति होती है।" बिना गुरु के किसी भी साधक को इस भवसागर से मुक्ति नही मिल पाती," क्योंकि गुरु शिष्य के ज्ञान-चक्षु खोलकर उसके अज्ञान तिमिर का ह्रास कर देता है। शिष्य युग-युगान्तर के कर्मब्यूह से मुक्त हो जाता है। जिस प्रकार पूरब, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण, आकाश-पाताल और ब्रह्माड में चन्द्रमा आलोकित है उसी प्रकार से गुरु भी अपने शिष्य को सर्वत्र प्रकाशित कर देते हैं। इस भवसागर से तरने के लिए जीव रूपी लोहे को काठरूपी गुरु की महत् आवश्यकता है। गुरु अपने साथ इस लोहे को भवसागर से पार उतार सकता है। क्योंकि वह नौका सत्गुरु द्वारा ही बनाई जाती है जिसे सत की वल्ली से खेया जाता है और मल्लाह रूपी गुरु स्वय इस पुनीत कार्य को अपने हाथों से करते हैं। सतसगत के घाट पर गुरु उस नौका को ले जाकर रोक देते हैं। यदि कोई भक्त उस खेवे मे नही चढता तो यह उसका दुर्भाग्य है। और सिवाय पश्चात्ताप के उसके पास और कोई रास्ता नहीं है।" परन्तु यह शिष्य की परख के ऊपर है कि वह पूर्ण गुरु का चयन करे। इस गुष्ठि के लिए सन्त जीतादास ने 'गुरु-निर्दोषिता का अग' मे सच्चे गुरु का वर्णन किया है। गुरु का चयन विकारयुक्त व्यक्तियो को छोडकर होना चाहिए। क्योंकि जिनमें स्वय विकार हों उनको गुरु बनाकर अन्य शिष्यो के विकार विमोचन की कहाँ तक आशा की जा सकती है। आपने गुरु महिमा का वर्णन करके स्पष्ट बताया है कि गुरु और गोविन्द मे कोई अन्तर नहीं है। सत्गुरु के प्राप्त होने पर गोविन्द की प्राप्ति सुलभ हो जाती है।

'गुरु गोविन्द मे अन्तर नाँहीं'"

क्योंकि गुरु मन रूपी शेषनाग को नाथकर उसकी शक्ति का विनाश कर देता है, इसके परिणामस्वरूप शिष्य कुमति का परित्याग कर देता है। और शिष्य के भ्रम और दुष्कर्मों का सहज ही निवारण हो जाता है। जो शिष्य काग-सदृश होता है वह हस-तुल्य बन जाता है। पाप और पुण्य से परे भरा सत्नाम का अपार भण्डार शिष्य के उपयोग के लिए मिल जाता है।" भला ऐसे सत्गुरु की महिमा का बखान किये बिना सन्त जीतादास कैसे मौन साध सकते थे। सन्त जीतादास ने प्रीति का थाल सजाकर, सुरति की अग्नि से पाँच बाती बालकर, चेतना की चौकी पर बैठकर, ध्यान की धूप सुलगाकर जो आरती की है वह वास्तव मे ही गुरु-गोविन्द के अभिन्न रूप को प्रस्तुत करती है।"

सुमिरण का महत्व—घीसापन्थ के प्रवर्तक सन्त घीसा साहब ने सत् को सर्वोपरि महत्व दिया था। गुरु के लिए भी उन्होने इसी विशिष्टता को आवश्यक समझा था क्योंकि सत्गुरु ही सत् साहेब का दीदार करा सकते हैं। जिसकी अखण्ड शक्ति की साधना का प्रथम सोपान भी अपने आदर्श गुरु द्वारा

प्रदत्त गुरु मत्र 'सत् साहेब' को अपने मे आत्मसात् किया जिसका सुमिरण करने से जीव जन्म-जन्मान्तरो के ब्यूहो से मुक्त हो जाता है। बिना सुमिरण के जीव सदा-मुक्त नही हो सकता है। मन के विकार समाप्त नही हो सकते हैं और दुविधा के जाल मे फँसा मन मुक्त नही हो सकता है। पुराने कर्मों की गाँठ ब्रह्म रूपी अग्नि के बिना नही जल सकती अत. उस ब्रह्म का स्मरण आवश्यक है।[१९] जो सत् का साहिब है—वह साधुओ की सगत से प्राप्त हो सकता है।[२०] जो व्यक्ति सत् साहेब का स्मरण नही करते उनका यह शरीर पवित्र नही रह पाता। बिना भजन के यह पिण्ड गन्दा हो जाता है। बिना भजन यह मानव कूकर और सूकर की भाँति हृदय से अन्धा ही रहता है। भजन के बिना काल के जाल से भी मुक्ति नही मिल पाती। यदि कोई सत् का सुमिरण करके 'सत् साहेब' की भक्ति करता है उसका अन्तर-हृदय चन्द्रमा के समान प्रकाशित हो उठता है और वह जीव पाप-पुण्य से विलग होकर 'सत् साहेब' का अपना बन्दा हो जाता है।[२१]

सत् का महत्त्व—घीसा पन्थ की विचार धारा मे ईश्वर की भक्ति का प्रथम सोपान सत् है। इसका व्यावहारिक अनुसरण करने पर भी सन्त जीतादास ने अत्यन्त बल दिया है। साँच को अपने जीवन मे अपनाकर भक्त को साहेब के दर्शन आसानी से हो जाते हैं। जो व्यक्ति सचाई की अग्नि को सहन कर लेते हैं। उनके सम्पूर्ण त्रास समाप्त हो जाते हैं। और पाँचो विकारो का विनाश भी सम्भव है।[१४] और जिन शिष्यो के पाँचो विकार समाप्त हो जाते हैं उनको गोविन्द अपने पास ही रख लेते हैं।[१५] सत्त शब्द की डोर का सहारा लेकर यह जीव भव सागर को पार कर सकता है। सत्त शब्द का साबुन लगाकर सुरति की शिला पर यह मानव-तन धोकर जितना पवित्र हो जाता है उसमे उस मानव-पिण्ड के जन्म-जन्मान्तर के मैल साफ हो जाते हैं। अतः भक्त को सत्य पर अडिग रहकर सतनाम का जाप कर सत् साहेब का स्मरण करना चाहिए, जो ईश्वर-साधना का मूल मत्र है।

धार्मिक संकीर्णता का विरोध—धर्म के ठेकेदारो ने अध्यात्म चिन्तन को अपनी सकीर्ण विचारधाराओं की परिधि मे बाँधकर धर्म को जिस दृष्टिकोण से प्रस्तुत किया वह मानव समन्वय मे सहायक सिद्ध न होकर बाधक और जहरीला सिद्ध हुआ। परिणामत भोला मानव हिन्दू-मुसलमान-जैसे सम्प्रदायो मे बँटकर एक-दूसरे पर अजगरी फूत्कारें मारने लगा। हिन्दुओ ने राम को और मुसलमानो ने खुदा को परम सत्ता मानकर अपने को इसान से दूर कर लिया और अलग-अलग दो खेमों मे बाँट लिया। दोनो धर्मों के अनुयायी उदारता के पावन मार्ग से दिग्भ्रमित होकर साम्प्रदायिकता की कुहेलिका मे सदा सर्वदा के लिए कैद हो गए। दोनो धर्मों की उदारता तब चरितार्थ होती जब हिन्दू खुदा की ओर

मुसलमान राम की परम सत्ता मे विश्वास करने लग जाते। वैसे दोनो में भेद भी तो कुछ नहीं था। कैसी विडम्बना है! नामदेव से चलकर कबीरदास द्वारा फलीभूत होती हुई निर्गुण सन्त परम्परा की सत्य की पावन सिकता पर अध्यात्म की जो भागीरथी प्रवाहित होती आ रही थी वह ब्राह्मणवाद के खण्डहरो मे विलीन हो गई। सन्त घीसा साहब के उपरान्त सन्त जीतादास ने अपनी बुलन्द आवाज को समाज और धर्म के रूढिग्रस्त अनुयायियों के सामने प्रस्तुत करके उसी महान् क्रान्ति का पुन श्रीगणेश किया था। यहाँ यह बात भी स्मरणीय है कि निर्गुण सन्त परम्परा म यह बात सर्वथा नूतन नही थी परन्तु यहाँ पर यह भी अस्वीकार नही किया जा सकता कि सन्त नामदेव के उपरान्त कबीरदास ने इस क्रान्ति को सर्वव्यापक रूप प्रदान कराने मे कोई भी कसर नही छोडी थी परन्तु इस प्रकार की साम्प्रदायिकता के खण्डहर ब्राह्मण-परम्परा मे पोषित धर्मानुयायियो के अहाते मे फिर भी ऊँच रहे थे जिनका उपचार सन्त जीतादास ने जन सामान्य को मैत्री और धर्म-समन्वय का पाठ पढाकर बडे प्रेम से वाणियो के माध्यम से करना प्रारम्भ किया। हिन्दू और मुसलमानो ने भ्रम मे पडकर अपना ही अनर्थ किया है उन्होने स्वय को राम और खुदा के दो खेमो में बाँट रखा है। उन्हें यह पता नही कि न कोई हिन्दू है, न मुसलमान।[12] इन्ही तुच्छ भावनाओ के कारण ये दोनो अपनी दलबन्दी की परिसीमाओ मे कैद होकर रह गए और उस सर्वघटव्यापी शक्ति का साक्षात्कार नही कर सके।[13] कोई अपने को हिन्दू कहता है, कोई मुसलमान। इस प्रकार की खीचतान निरर्थक है। राम और खुदा को अलग-अलग कहना इन दोनो की ही मूर्खता है। इन दोनो को यह ज्ञात नही है कि दोनो के अन्दर एक ही शक्ति व्याप्त है। जिन भक्तो को पर-ब्रह्म अविनाशी की प्राप्ति हो जाती है वे हिन्दू और मुसलमान जैसी परि-सीमाओ से नहीं बँधते हैं। यह अलगाव की खीचतान निरर्थक है।[14] हिन्दू समाज की चारवर्णीय व्यवस्था का भी सन्त जीतादास ने खुलकर विरोध किया उन्होने कहा कि चारों वर्णो मे न कोई ऊँचा है, और न कोई नीचा। जो कोई ईश्वर की भक्ति करता है वही भक्त सबसे ऊँचा है।[15] जाति के आधार पर यह भेद-भाव भ्रम मात्र है। सभी एक ही माटी के भाँडे हैं।[16] यही कारण था कि सभी जातियो और धर्मों के भक्तों ने उन्मुक्त मन से घीसापन्थ को अपनाया। परन्तु कैसी विडम्बना है कि कुछ लेखको ने घीसापन्थ के सिद्धान्तो और विचारधाराओ का गम्भीरता से अवलोकन न करके इस पन्थ पर जातिवाद की दुर्गन्ध छोडने का असफल और भ्रामक प्रयास किया है। इस कथन की पुष्टि 'हरियाणा सास्कृतिक दिग्दर्शन' ग्रन्थ मे सकलित डॉ० रणजीतसिह के निबन्ध 'हरियाणा के पन्थ-प्रवर्त्तक सन्त' की प्रस्तुत पक्ति से हो जाती है। पक्ति इस प्रकार है—'घीसा पन्थ के अनुयायी चमार होते हैं।" उनका यह कथन हरियाणा की ही भक्त-शृखला

का सर्वेक्षण करने पर एकदम असत्य सिद्ध हो जाता है।

इस वर्ण-व्यवस्था और साम्प्रदायिकता के अतिरिक्त सन्त जीतादास ने ईश्वरीय साधना हेतु अपनाए बाह्याडम्बरो का भी विरोध किया। तीर्थो की यात्रा[१७] मन्दिर और मस्जिद मे घटे और अजान की आवाज, साधुओ का मुण्डन,[१८] तप, व्रत तथा अन्य कर्मकाण्डो का सम्पादन एक प्रदर्शन है। ईश्वर की सच्ची साधना नही। वेद और कुरान का पारायण,[१९] ईश्वर-प्राप्ति मे सहायक सिद्ध नही होता। इनके पठन पाठन से ईश्वर की साधना के लिए प्रेरणा मिल सकती है। जो लोग अग्नि से तपकर तपस्या करते हैं, कुछ पानी मे खडे होकर जप करते हैं और कुछ तीर्थो की खाक छानते फिरते हैं, ये सभी उपादान भटकाव हैं। ईश्वर तो घट-घट म समाया हुआ है जो सद्गुरु की दया से घर बैठे ही मिल जाता है।[२०] गगा म स्नान करने से यह शरीर पवित्र नही होता है। यह शरीर ज्ञान की गगा से ही प्रक्षालित हो सकता है। जनेऊ पहनने स ब्रह्म का ज्ञाता नही बना जाता है। कर्म से ब्राह्मण बनने का कोई प्रयास नही करता जातिगत ब्राह्मण बनने का दावा सभी करते हैं।

सन्तों की सर्व व्यापकता—जितने भी महान् सन्त इस धरा पर अवतीर्ण हुए हैं, उनका ईश्वर से सीधा सम्बन्ध होता है। इसी कारण ये सन्त हमेशा घट-घटवासी होते हैं। ये सन्त मोक्ष प्राप्त करने के उपरान्त आवागमन स मुक्त हो जाते हैं। इन्ही सन्त गुरुओ की अपार मेहर से शिष्य मोह पिता, तृष्णा माता और कल्पना-कुल की नेह डोर का परित्याग कर देता है और मन को फकीर बनाकर जमराज के बन्धन से मुक्त हो जाता है।[२१] यह सब घट-घट मे बासी सन्तो की मेहर का ही प्रसाद होता है। इसी कारण इन महासन्तो को 'बन्दी छोड' की सज्ञा से विभूषित किया जाता है।[२२] चाहे सन्त कबीरदास हो, चाहे गरीबदास हो, चाहे धीसादास हो या अन्य महा सन्त। ये सभी सर्वव्यापी हैं।[२३]

परमार्थवाद—परमार्थ शब्द का प्रयोग आज तक परोपकार के अर्थ मे होता आया है। यह अर्थ सकोच का दुष्परिणाम है। सन्त परम्परा मे इस शब्द पर पर्याप्त महत्त्व दिया गया है। परमार्थ के लफ्जी मायने हैं, परम अर्थ। अर्थ कहते हैं लाभ को, फायदे को, ऐसा फ़ायदा जो सबसे बढ-चढकर हो।[२४] जिसका तात्पर्य सासारिक फायदे से नही, आध्यात्मिक उपलब्धि से है। यह उपलब्धि परमात्मा की उपलब्धि है जो एक है और घट घट मे व्याप्त है। चाहे उसकी क्रियाएँ अलग-अलग हैं।[२५] यह ईश्वर अजर, अमर अनन्त, अविनाशी और अलेख है। आयु से परे है। काल उसके अधीन है।[२६] इसका न कोई रूप है और न काया है। ईश्वर इस पच भौतिक शरीर से ऊपर उठकर शब्द के सयोग से प्राप्त हो सकता है।[२७] ईश्वर पाँच तत्त्वो और तीन गुणो से परे है।

त्रिगुणीय माया की सरचना ईश्वर ने ही की है। इसी सगुण से ऊपर उठकर निर्गुण को खोजा जा सकता है। आकाश, पाताल और ब्रह्माण्ड मे इस त्रिगुणीय माया का खेल उसी द्वारा क्रीडायित है।[४] सगुण शरीर और निर्गुण ब्रह्म के मध्य बारीक और नाजुक रास्ता है जो गुरु की कृपा से देखा जा सकता है। जब भक्त किसी पूर्ण सन्त के अधीन हो जाता है तो सत्गुरु की मेहर से तथा अपने आचरण को सुधारकर शिष्य काम, क्रोध, माया, मोह और अहकार का परित्याग कर देता है। शील, सन्तोष और दया की त्रिवेणी मे स्नान कर अपनी भक्ति को आगे बढाता है और इस स्थूल शरीर से उठकर परम धाम तक पहुँच सकता है।[५] इस प्रकार का रास्ता अपनाने मे भक्त को जीते जी मरना आ जाता है और वही भक्त राम को प्यारा होता है।[६] इस समय मन शब्द के सुमिरण से मुग्ध होकर चेतन को मुक्त कर देता है और चेतन (आत्मा) पच-भौतिक शरीर से ऊपर उठकर परब्रह्म की नाजुक राह की ओर अपने प्रियतम से मिलने के लिए चल पडती है।[७] इस प्रकार सत् की डडी का अवलम्बन लेकर सुरति की तराजू पर निर्गुण और सगुण की महत्ता का मूल्याकन करना भक्त की भक्ति पर आधारित है। गुरु की कृपा भी होना तो आवश्यकीय है।[८] हमारा यह शरीर एक चल मन्दिर है। ईश्वर इस मदिर मे ही है। इसकी प्राप्ति का प्रयास चेतन से प्रारम्भ होता है। मन, बुद्धि और इन्द्रियो के घाट से उठकर जब भक्त चेतनता के देश मे पहुँचता है तो वहां उसको पारब्रह्म के दर्शन होते हैं। उस समय आत्मा चलती फिरती है और बातें भी करती है तथा पूर्ण पुरुष के दर्शन कर लेती है। यही पर गुरु के चरणो म बन्दगी करी जाती है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि निर्गुण सन्त परम्परा मे सामाजिक, राजनैतिक और धार्मिक तथा आध्यात्मिक क्रान्तियो मे सन्त जीतादास का नाम सदा सर्वदा के लिए स्वर्णाक्षरो मे अकित रहेगा जिन्होने युग और समाज को एक नूतन दृष्टि प्रदान करके अज्ञान के तिमिर से मुक्त करके ज्ञान के सूर्य की दिव्य ज्योति दान की और ईश्वर साधनार्थ वाह्य उपादानो की उपेक्षा करके आपने ईश्वरीय साधना को इस रूप मे प्रस्तुत किया :

प्रेम प्रीत का निश्चय थाल।
बाती पाँच सुरत से बाल।
चेतन चौकी धूप कर ध्यान।
निर्मल ज्योति परम सुजान।

सन्दर्भ

१ सब धामन का धाम है, यू ही खेकड़ा ग्राम।
दिल की दुर्मत खोय के यहीं मिले हैं राम।
गाम में सतगुरु पूरे पाए।

—सन्त जीतादास, 'श्री ग्रन्थ साहेब,' पृष्ठ १३५ वाणी १५

२. (अ) जीता जन्मा जाट के वह मरता ज्यों बैल।
सतगुरु की कृपा भई पाई निर्गुण सैल।

—उपरिवत, पृष्ठ ३३, वाणी ५६

(आ) लम्बरदार की लम्बी बाट, ये देखो सतगुरु के ठाट।
काटे पाप सुधारी बाट, घीसाराम के आसरे सुधरया जीता जाट।

—उपरिवत्, पृष्ठ ३८, वाणी ११७

३ मो भागो का कहिया नाही।

भूल्यों ने भागो का दिया बताई॥

—उपरिवत्, पृष्ठ १६२, वाणी १७

४ जीता पढ़ा न अक्षर सीखिया।
गुरु प्रताप अगम ही देखिया।

—उपरिवत् पृष्ठ १५८, वाणी ६

५ डॉ॰ रफीक अहमद का ४ जुलाई ८१ का पत्र।

६ जीवत जीयो बुढ़िया मरजा, रहो साहब का प्यारा।

—उपरिवत् पृष्ठ १४७, वाणी १३२

७ पूरण ब्रह्म जुलाहा गुरु मिल्या लिया सूत सुलझाई।
घीसा सन्त मिला गुरु पूरा भक्ति का दरा दिया लगाई॥

—उपरिवत पृष्ठ १७५, वाणी ६६

८ इसे यहाँ के निवासी खण्डवासी भी कहते हैं।

९ आत्मनी मुकदमी छुटाके ग्राम में भीख मगाई।
हुब्या-हुब्या सब पै कहाया आप रहिया घट माँही॥

—उपरिवत्, पृष्ठ २७८, वाणी ८१०

१० (अ) खुद बादशाह कुराड विराजे,
जीता कू दिया मुराणा।

(आ) देख्या-देख्या ग्राम मुराणा
जहाँ सतगुरु का उतरा बाना।

—डॉ॰ नीलम रानी श्री घीसा सन्त जी का जीवन चरित्र,' पृष्ठ ४७

११ सत की शरण हरीजन उभरे नरसी सत का बन्दा।
जन प्रहलाद रहे सत शरणे अग्नि में रख लिया ठंडा॥
सत अनन्त हुए सतवादी जिनका कट गया फन्दा।
घीसा सन्त दया करी जन पैं जीता के धरिया सिर पजा॥

—सन्त जीतादास, 'श्री ग्रन्थ साहेब,' पृष्ठ ६८, वाणी ७३८

१२. हर का भजन करिया सोई तरिया ।
जन प्रहलाद उभार लिये हैं हिरणाकुश कूँ मारिया ।

द्रोपदी के चीर अनन्त बढ़ाए मीरा का विष अमृत कर डारिया ।
—उपरिवत्, पृष्ठ २७०, वाणी ७५३

१३. काम बड़ा कसाई रे साधो डरते रहता मेरे भाई ।
मरे-मरे कूँ फिर यू मारे इसकूँ दया न आई ।।
इन्द्रपुरी कूँ इन्द्र छोड के गौतम ऋषि के जाई ।
उद्दालक मुनि लिया के कारण पहुँचे ब्रह्मा ताई ।।
भस्मासुर महादेव का चेला पारवती लेनी ठहराई ।
आगे आगे महादेवा भागे गुरु शिष्या ना भाई ।।
मोहिनी रूप धरिया भगवाना भकर लिये भरमाई ।
बड़े-बड़े पारखिया लूटे रैयत की कहाँ चलाई ।।
घीसाराम उभारो जन को जीता शरण पड़िया थारी आई ।।
—उपरिवत्, पृष्ठ २४८, वाणी ६०४

१४. प्रभु मेरे गर्व निवारण हारे ।
अमरीक पै चक्र चलाया दुर्वासा गए हारे ।
नारद मुनि का गर्व निवारिया कर मोमर की नारे ।
काग भुशण्ड का गर्व निवारिया उडत-उडत गए हारे ।
हिरणाकुश का गर्व निवारिया खम फाड लिए मारे ।
उस रावण का गर्व निवारिया गढ़ लका करी हारे ।।
कस राजा का गर्व निवारिया केश पकड के डारे ।
इन्द्रदेव का गर्व निवारिया बरसत-बरसत हारे ।
जीतादास शरण थारी आया रख लिए नाम अधारे ।।
—उपरिवत्, पृष्ठ २६०, वाणी ६८५

१५. भीतर करो सिंगार पिया जब रीझेगा ।
शील सन्तोष दया का आवर्ण चूनड ज्ञान पसीजेगा ।
—उपरिवत्, पृष्ठ १५८, वाणी १७०

१६. कब चलूं पिया के देश ।
बहुत दिना बावल घर याणी लगे कुमत के पेच ।
कब प्रीतम मेरा आवे लेण कूँ देखूँ बाट हमेश ।
प्रीतम मेरा ब्रह्म रूप है जिसकूँ कहें अलेख ।
—उपरिवत्, पृष्ठ २८५, वाणी ८६४

१७. अपने प्रीतम के घर जाऊँगी, बहुड उलट नहीं आऊँगी ।
चन्द सूरज की वहाँ गम नहीं मैं तो ज्ञान का चिराग जलाऊँगी ।
हिन्दू तुरक नहीं वहाँ कोई मैं तो घट ही में वेद उचाऊँगी ।
पीतम मेरे दिल की बूझें मैं तो अपने समसी बैन सुनाऊँगी ।
नहीं वहाँ देव नहीं कोई साधक मैं तो एकली ही दतलाऊँगी ।
चरण कमल की सेवा करके सेजड़ियाँ सुख पाऊँगी ।

पच अग्नि में करें तपस्या, झरने बैठ मिल्या नाहीं।
बड़े-बड़े ने पैर सुखाये, उनके राम करया नाहीं।
तीर्थ व्रत बहुत से कीन्हें आल्हे रह गया घट मांही।
घीसाराम करी गुरु कृपा जिनकूँ मिल गये घट मांही।

—उपरिवत्, पृष्ठ १८८, वाणी १८८

४१. मेरे मन कूँ फकीर बना ले सतगुरु बन्दी छोड़ छुटा ले।
मोह पिता और माता तृष्णा कल्पना कुल तै छुटा ले।

—उपरिवत्, पृष्ठ १६०, वाणी २०४

४२. जीता मेरा गुरु तो करे कुमति का नाश।
संत बनावै ब्रह्म की जहाँ कबीरा वास।

—उपरिवत्, पृष्ठ ६४, वाणी ४१

बदी छोड़ थारा नाम सुना था प्रकट बद छुटा दई मेरी।

—उपरिवत्, पृष्ठ २६०, वाणी १२

४३. मेरो तुही कबीर है सारे ही घीसा सन्त।
एक ब्रह्म सारे रम रहा तन देही धरी अनन्त।

—उपरिवत्, पृष्ठ, २६१, वाणी ६८

४४. परम सन्त कृपालसिंह, 'परमार्थ का सार', पृष्ठ १

४५. एको ब्रह्म सकल घट माहीं किया न्यारी-न्यारी रे।
घीसा सन्त कहे सुन जीता भक्ति राम कूँ प्यारी रे।

—उपरिवत्, पृष्ठ २५७, वाणी ६६४

४६. गुरु ने मोहि ऐसा ज्ञान बताया।
ना वो बूढ़ा, ना वो बाला नहीं काल ने खाया।
उसको काल कौन विधि खावे काल उन्हीने खाया।
रूप न रेख रंग नहीं वाके ना कहीं गया, न आया।

—उपरिवत्, पृष्ठ २७५, वाणी ७६०

४७ देह विदेही शब्द सनेही वाके रूप नहीं काया।

—उपरिवत्, पृष्ठ २७४, वाणी ७८२

४८. निर्गुण तै सब सर्गुण निपज्या अगन पवन और पानी।
आकाश पाताल, पिंड ब्रह्माण्ड में त्रिगुण माया रचानी।
पाँच तत्व गुण तीन तें आगे हर की अकथ कहानी।

—उपरिवत्, पृष्ठ १६६, वाणी २४८

४९. सत गुरु आप अलेख विसम्भर पाया है।
भक्ति हेत के कारण सतगुरु मनषा रूप बनाया है।
काम क्रोध लोभ मोह ममता उनमें तैं सुलझाया है।
शील सन्तोष विवेक विचारया दया का बाजार लगाया है।
सन्त सूर मैं आये सौदे कूँ सिर सौंटे भक्ति लगाया है।
सिर सौंटे का सौदा लेके अमरापुर कूँ आया है।
मैं जानू था कहीं दूर बसत है घट ही में समझाया है।

—उपरिवत्, पृष्ठ २६२, वाणी ६६६

५० जीवत मरिया सोई प्यारा राम कूँ जीवत मरिया सोई प्यारा।

—उपरिवत्, पृष्ठ २१४, वाणी ३६३

५१ नाथ मोई अवगत की गत गावे।
पाँचो कूँ नाथ कैद कर राखें त्रिगुण तें लख जावे।

—उपरिवत्, पृष्ठ २६३, वाणी ७०५

५२ मैं कैसे चीन्हूं मेरा राम याही मे रे।
पाँच तत्व का देवल कीना त्रिगुण लग्या मसाला।
चेतन राज लग्या देवल पै पूर्ण ब्रह्म दयाला।
देवल में देवल मिल जाता, देवल देख भुलाना।
इस देवल में बसे देवता जै कोई करै इमाना।
चलता फिरता देवल कीना ऐसी कुछ कल लाई।
देवल में देवल बन जाता या देखो चतुराई।
देवल में तो आप रहत है पूर्ण पुरुष अकेला।
घीसाराम करी गुरु कृपा ऐसी सैन बताई।
जीतादास इसीमें खोजो माँहि तेरा साँई।

—उपरिवत्, पृष्ठ १८५, वाणी १७३

५

सन्त नेकीराम : जीवन-वृत्त एवं विचार-धारा

जीवन-परिचय

सन्त नेकीराम का जन्म[1] फाल्गुन मास की शुक्ल पक्ष पूर्णिमा को सन् १८४८ ई० मे सोनीपत जनपद के नाहरी[2] ग्राम के एक जाट परिवार मे हुआ था। आपके पिता चौ० शादीराम और माता श्रीमती लक्ष्मी देवी दोनो ही धार्मिक प्रवृत्ति से ओत-प्रोत थे तथा ईश्वर-भक्ति एव सन्त-सेवा मे गहन आस्था रखते थे। आस पास जहां भी साधु-सन्तो का आवागमन होता था, दोनो ही अपने सासारिक कार्यों का परित्याग करके उस स्थान पर जाकर ज्ञानमयी वाणी से युक्त प्रवचनो को असीम श्रद्धा एव विपुल प्रेम के साथ सुना करते थे। विदा होते समय सन्तो की चरण-रज निज मस्तक पर धारण करके स्वय को भाग्यशाली समझते थे। सन्त नेकीराम ने भी अपने प्रवचनो मे इस तथ्य को स्वीकार किया है कि 'गुरु-भक्ति व सन्त-सेवा अपने पूर्वजो से विरासत के रूप मे मिली हुई मेरी पैतृक सम्पत्ति है।'[3] आपका जीवन चमत्कारपूर्ण सयोग से ही प्रारम्भ हुआ और चमत्कार युक्त सयोग के साथ ही सम्पूर्ण हुआ था। आपके जन्म के समय आपकी माता के पलग के निकट एक विद्युत्-सदृश आलोक पुजीभूत होकर कुछ देर बाद समाप्त हो गया। बहू की देख-रेख मे खडी आपकी दादी ने जब अद्भुत प्रकाश देखा तो भूत-प्रेत मे विश्वास रखने वाली आपकी दादी ने आपके पितामह चौ० मोहकम सिंह को एक पुरोहित के पास शका-निवारणार्थ भेजा। तब पुरोहित ने प्रसन्न होकर आपके जीवन की भविष्यवाणी करते हुए कहा था - "चौ० साहब आप बुरा न मानना। यह आपके किसी पूर्व पुण्य कर्म का फल है जो इस बच्चे ने जन्म लिया। अन्यथा यह बालक आपके यहाँ पैदा होने योग्य नही था। आपके घर भगवान् इस बच्चे को दीर्घ आयु करे। यह कोई बडा ही भाग्यशाली आदमी बनेगा, जो आपका, आपके वश का नाम ससार मे सब प्रकार से उज्ज्वल कर देगा।"[4] सन्त नेकीराम बाल्यकाल मे ही मल्लयुद्ध[5] मे रुचि रखने के साथ-साथ प्रातःसाय विधिपूर्वक ईश्वर-साधना और योग मे लीन रहने लगे थे। योग साधना

करते-करते उनकी बुद्धि और आत्मा इतनी निर्मल हो गई थी कि वे समाधिस्थ होकर अध्यात्म की गहराई मे अनवरत उतरते ही चले गए। ईश्वर क्या है ? मैं क्या हूँ ? ससार क्या है ? ससार का चक्र नियमपूर्वक कैसे चल रहा है ? इसका चालक कौन है ? आदि अनेक प्रश्नो का आपके हृदय मे एक भ्रान्तिकारी तूफान उठ रहा था। इन समाधानों के लिए सतगुरु की प्राप्ति हेतु आपका मानस-हस बचपन से ही छटपटाने लगा था। उस समय नाहरी ग्राम के ही निकट हलालपुर नामक ग्राम मे घनीराम नाम के एक तपस्वी तथा कर्मकाण्डी ब्राह्मण रहते थे। एक दिन नेकीराम जी वहाँ पहुँचे और उनसे ईश्वर के द्वार तक पहुँचने की जिज्ञासा व्यक्त की। इस पर उन्होने जो उत्तर दिया था उसका साराश इस प्रकार है—

"यदि तुम ईश्वर-प्राप्ति का मार्ग ढूँढना चाहते हो तो सुनो ! तुम सत्य-नारायण, श्रीमद्भागवत, रामायण आदि की कथा सुना करो और स्वयं अपने घर भी करवाया करो। प्रतिदिन ब्राह्मणो को जिमाया करो। कुछ दान-दक्षिणा भी दिया करो। इसी मे तुम्हारा कल्याण है। यह ईश्वर-प्राप्ति का मार्ग नही, अपितु भगवान् तुम्हें दर्शन देंगे।"[1]

इस साधन से आपको लेश मात्र भी तृप्ति नही हुई और विवश होकर आपने पडित जी को इस प्रकार उत्तर दिया था, "पडित जी, जब ऐसी बात है तब तो अमीर लोग ही मोक्ष पद के अधिकारी हो सकते हैं क्योकि वह नित्यप्रति कथा-कीर्तन भी करा सकते हैं और ब्राह्मणो को अच्छा सुस्वाद भोजन भी खिला सकते हैं।"[2] फलस्वरूप आप अपने घर पर ही पूर्ववत् योग-साधना मे लीन रहने लगे।

गुरु-दर्शन—एक बार कृष्ण जन्माष्टमी का पर्व था। कई दिन से आप पेचिश के मरीज़ थे। बार-बार पानी लेने की क्रिया से निवृत्ति पाने के लिए पश्चिम दिशा मे एक तलाब के किनारे पर ही बैठ गए। जब पूर्णरूपेण समाधिस्थ होकर प्रभु-जाप का आनन्द ले रहे थे उसी मध्य उनको ऐसी अनुभूति हुई कि आपको कोई बार-बार प्रेरित करके कह रहा हो कि अपने नेत्र खोलो और देखो तुम्हारा मार्गदर्शक सामने आ रहा है। इस प्रेरणा को प्रभु-आज्ञा समझ जब आपने अपने चक्षु खोले तो देखा कि एक दिव्य स्वरूप महात्मा आपकी ओर बढ़े चले आ रहे हैं। निकट आने पर सन्त नेकीराम ने उन्हे सादर प्रणाम किया। उस महान् विभूति के दर्शन पाने एव चरणस्पर्श मात्र से ही सन्त नेकीराम के शरीर मे विद्युत् के समान एक अपूर्व चैतन्य की लहर-सी दौड गई और उनका हृदय-मन्दिर आलोक से जगमगा उठा। उस समय महान् सन्त भी अपने शिष्य की ओर निहार-निहारकर आत्मविभोर हो रहे थे। नेत्रो द्वारा ज्योति-दान दे तीव्रतम प्रकाश-पुज की स्थापना कर रहे थे, जिससे शिष्य इस ससार मे अन्य भक्तो को भी आलोकित कर सके। महान् विभूति ने प्रेम-प्रसाद देकर सन्त नेकीराम को

गुरु-मत्र मे दीक्षित किया और हृदय से लगाकर शिष्य के रूप मे ग्रहण करके कहा—

"प्रिय, यह व्रत आदि रखना भ्रम है। तीर्थ-यात्रा एक आडम्बर है। मैं यह जानता हूँ कि तुम ईश्वर-प्राप्ति का सत्य मार्ग ढूँढना चाहते हो। किन्तु व्रत रखकर, आत्मा को कष्ट देकर, उष्णता शीतलता से शरीर को कष्ट पहुँचाकर ईश्वर-प्राप्ति का मार्ग ढूँढना ऐसा है, जैसा वन्ध्या स्त्री से पुत्र प्राप्ति की आशा रखना। अरे भोले क्या सांप अन्न खाता है ? नही, वायु भक्षण करके ही रहता है। बगुला भी पानी म रहकर एक पैर पर खडा होकर एकाग्र चित्त से ध्यान करता है। घडियाल, मगरमच्छ आदि जीव भी जल मे रहते हैं। कौआ भी जल मे स्नान करता है। गधा भी श्मशान मे लेटकर सम्पूर्ण शरीर म भस्म रमा लेता है। किन्तु इसस क्या लाभ ? इनके भीतर भी कपट भरा हुआ है।" वायुभक्षण, एकान्तवास, भस्म लेपन, जल मे बैठकर अथवा खडे होकर भजन साधन इत्यादि करना यह ईश्वर प्राप्ति का साधन नही है। यदि ईश्वर-प्राप्ति क मार्ग की खोज करनी है तो सत्गुरु की शरण लो, तत्त्वदर्शी वैज्ञानिको से मिलो।''[१]

जब वे महात्मा इस प्रकार का उपदश दे रहे थे तो सन्त नेकीराम को ऐसा प्रतीत हुआ मानो हृदय-गुहा से ज्ञान रूपी आनन्द स्रोत उमड आया हो। विरह-व्यथा का वह शूल जो सर्वदा उन्हे तडपाया करता था, समझो आज निकालकर फॅक दिया गया हो। अपने मानस की अजीव दशा देखकर उन्होने महान् सन्त का आभार व्यक्त किया और कहा कि आपकी मधुर स्नेहिल वाणी स मेरा हृदय गद्‌गद् होकर शरीर का रोम रोम पुलकायम न हो रहा है। भगवान् आज मैं सद्‌गुरुदेव जी के साक्षात् दर्शन कर कृतार्थ हुआ। मैं वचनबद्ध हो प्रतिज्ञा करता हूँ कि भविष्य मे सदैव आपक बताए मार्ग पर चलूँगा। आपका पथगामी बनूँगा। मैं आज स आपका शिष्र हूँ। मेरी शका के निवारण हेतु आप अपना परिचय देने की कृपा करें। तब महान् सन्त ने सरल भाव से छोटा सा उत्तर दिया था 'सत धीसादास'। और पुण्य आशीर्वाद देकर अन्तर्ध्यान हो गए। सन्त नेकीराम जी इस प्रेम भरी रसीली बूटी का पान कर मूर्च्छित अवस्था मे पडे रहे। कुछ समयोपरान्त जब चेतना लौटी तो उन्होने वहाँ झील और वृक्ष के अतिरिक्त कुछ नही देखा। उस समय सन्त नेकीराम जी की उम्र १४ साल थी।

गृह-परित्याग—गुरु दर्शनोपरान्त सन्त नेकीराम के हृदय-कपाट खुल गए थे। ज्ञान प्रदीपिका प्रज्वलित हो उठी थी। अब आपके हृदय म ईश्वरीय रहस्य के अभिज्ञान की प्रेम-गगा की बाढ-सी आ गई थी, जो किसी भी प्रकार के मायावी बन्धन से न रुक सकी। यद्यपि आपके पिता चौ० शादीराम ने आपका विवाह भी विशिष्ट रूप स इसी बन्धन की सार्थकता के लिए जल्दी ही करा दिया था। किन्तु आपने अपनी धर्म-पत्नी को भी अपने ज्ञानोपदेश से निहाल कर दिया जिससे

उन्होंने आजीवन ब्रह्मचर्य का पालन कर सर्वथा नेकीराम के प्रवचनों का पालन किया और सत्य पथ का निर्वाह कर सन्त की योग-साधना में अपना अनन्य योगदान दिया था। किन्तु दैवयोग से वे यौवनावस्था में ही परलोक सिधार गईं। अब उस विरह ने सन्त नेकीराम को माया बन्ध से और भी उन्मुक्त कर दिया था। एक दिन अर्द्धरात्रि को गृह-परित्याग कर माया, मोह के अटूट बंधन से विरक्त हो चुपचाप आप अज्ञात शक्ति की खोज में निकल गए। सन्त नेकीराम ने किसी विद्यालय में उच्च विद्याध्ययन नहीं किया था फिर भी आपने गृह-परित्याग के अनन्तर विद्वानों के सत्संग से बहुत कुछ सीखा। इसी सत्संग के कारण आपका स्वाध्याय अनवरत चलता रहा था। स्वाध्याय, साधना और सत्संग तो आपके दैनिक कार्य थे और यही आपकी आत्मा का पावन भोज्य था। गुड़गाँव शहर के निकट पर्वतीय अचल में स्थित एक रमणीक ग्राम कासन खोहड़ा में आकर प्रथम बार आपने अपने प्रवचनों द्वारा अनेक भक्तों का उचित मार्गदर्शन किया। कुछ समयोपरान्त जनमानस को अपने प्रवचनों का मधुर पान कराने के लिए आप पटियाला, अम्बाला और जींद आदि रियासतों में भ्रमण करते रहे। इस यात्रा में आपका शिष्य हीरादास ब्रह्मचारी आपके साथ रहा था, जिसको आपने अनेकश अग्नि-परीक्षाओं के बाद जींद में आकर गुरु पूर्णिमा को काषाय परिधान धारण करा सन्यास आश्रम की दीक्षा दी थी। अपने भक्तों के अनुरोध पर एक दिन जब आप निरजन गाँव पहुँचे तो वहाँ जाकर आपने वहाँ के लोगों की मन स्थिति का अध्ययन किया और उसे गहराई से समझा। वहाँ के लोग गूगापीर के अन्धभक्त थे। गूगापीर की छड़ी प्रत्येक घर में विराजमान थी। उधर ग्राम कूथरा के एक सयाने जाट हरचन्द ने भूत प्रेत आदि का अपना अलग ही भय जमा रखा था। सन्त नेकीराम ने यहाँ की भोली जनता को इन पाखण्डों से मुक्ति दिलाई। अपनी शक्ति से आश्वस्त करने के लिए आपने अनेक प्रकार के चमत्कारों से निरजन ग्राम-वासियों को चमत्कृत भी किया था। वहाँ के लोगों की असीम भक्ति को देखकर आपने अपनी योग-साधना का प्रथम कीर्तिमान भी वहीं पर स्थापित किया था, जिसका प्रतीक था निरजन ग्राम का 'श्री सन्त आश्रम'। यह सन १८७८ ई० की बात है। जो नारी अब तक भक्ति-साधना के लिए उपेक्षिता थी उसे आपने भक्ति साधना के पथ पर अग्रसर कर पुरुषों के समान ही सम्मानित किया था। कई विधवाओं को साध्वी बनाकर उनका उद्धार किया। कुछ दिनों बाद आप अपने जन्म-स्थान नाहरी लौट आए। यहाँ आपने अपने कर कमलों द्वारा सन् १८८० ई० में साधु और साधकों की साधना एवं सत्संग हेतु ग्राम से कुछ ही दूर, पश्चिम दिशा में 'श्री सन्त आश्रम' की स्थापना की थी। जिसका निर्माण-) सन १-८८ ई० में हुआ था। इस प्रकार अब तक निरजन, खेड़ी दमकन और नाहरी में आश्रमों की स्थापना करके आप उत्तर प्रदेश में भी सत्संग-यात्रा पर

निकले और मेरठ, बुलन्दशहर, मुजफ्फरनगर आदि जनपदों मे घीसा पथ का प्रचार एव प्रसार किया। आपकी अनिशपथ साधना से राजस्थान, मध्य प्रदेश और अन्य प्रान्तो मे भी 'घीसा-पथ' की पताका फहराने लगी।

निर्वाण—आपको अपने निर्वाण का पूर्वाभास हो गया था। एक दिन फकीरा नामक हरिजन जब सुनहरे कलाबत्तू की चित्रकारी से युक्त मनमोहक नवीन जूतो का जोडा सन्त नेकीराम जी को लाया तो उस प्रेमी की शिल्पकला की सराहना तथा जूतो की प्रशसा करते हुए भक्तो ने कहा कि महाराज जी जोडा वास्तव मे ही सुन्दर बना है। तब उन्होने मुस्कराकर उत्तर दिया था—"कोई बात नही यह जोडा तुम्हारे पूजने तथा दर्शन करने को हो जायगा।' और दो-एक दिन बाद ही ज्येष्ठ सुदी सप्तमी सन् १९१२ ई० को मध्य रात्रि को आप इस नश्वर शरीर का परित्याग करके सत्यलोकवासी हो गए।

सन्त आश्रम नाहरी म आज भी आपकी छडी, जूते, आसन, पखा और अनेक ऐतिहासिक वस्तुएँ सुरक्षित हैं। आज भी हिन्दुस्तान के कोने कोने से अनेक भक्त आपके उक्त आश्रम पर असीम श्रद्धा के साथ आकर मस्तक झुकाते हैं। अनन्त भक्तो की भक्ति का यह ज्वार क्रमश फागुन सुदि पूर्णिमा, मिति आषाढ सुदि पूर्णिमा, मिति कार्तिक सुदि पूर्णिमा आदि पर्वों पर देखा जा सकता है। सम्प्रति आश्रम के महन्त श्री समन्दरदास जी अपने सौजन्य से 'घीसा पथ' की साहित्यिक चेतना मे अन्यतम सहयोग दे रहे हैं। यह बडे हर्ष की बात है कि आप एक कुशल नाटककार हैं। आपके नाटको में भक्ति-रस की प्रधानता है।

चमत्कार—सन्त नेकीराम ने अपने भक्तो को अनेक चमत्कार दिखाकर चमत्कृत कर दिया था। कुछ चमत्कार पठनीय हैं, जो 'जीवन गाथा' ग्रन्थ से चयनित हैं।

(१) एक बार की बात है। सन्त आश्रम निरजन मे पूर्णिमा के दिन सत्सग की समाप्ति के उपरान्त सत्सगियो म प्रसाद बाँट दिया गया। उस सत्सग मे निरजन ग्राम की भी एक स्त्री आई थी। उसने भी प्रसाद प्राप्त किया, किन्तु खाया नही। क्योकि उसने सन्त नेकीराम के उपदेश म सुना था कि जो उनका प्रसाद एक बार खा लेता है वह उन्हीका हो जाता है। इस बिचार म उसने प्रसाद की उपेक्षा करके उसे भैंस के कुण्ड म डाल दिया। रात्रि म वह भैंस खुल गई और कही भाग गई। भैंस के चिह्नो को ढूँढते-ढूँढते उसकी खोज की तो वह भैंस सन्त आश्रम मे बैठी हुई थी। तब स यह बात प्रचलित हो गई कि यह सन्त जादूगर है इसका प्रसाद नही खाना चाहिए।

(२) एक बार मेरठ जनपद की तहसील मवाना के ग्राम मीवाँ मे सन्त नेकीराम जी के शिष्य महात्मा हीरादास का सत्सग चल रहा था। इकतारे पर शब्द-वाणियाँ चल रही थी। अचानक ही महात्मा हीरादास को सन्त नेकीराम जी ने

पुकारा'—हीरादास ! ' परन्तु हीरादास इस आकाशवाणी पर नहीं उठे। वह सोच रहे थे कि शब्द पूरा होने के उपरान्त ही उठूँगा। इसके उपरान्त एक आवाज और आई। दो बार आवाज सुनने पर भी जब हीरादास नहीं उठे तो तीसरी बार नेकीराम जी ने कठोरता से कहा—'हीरादास ! सुना नहीं।' अब हीरादास ने तुरन्त ही इकतारा जमीन पर रख दिया और खड़े हो गए। सत्संगी कहने लगे—'महाराज ! शब्द सुनाओ खड़े क्यों हो गए ? अभी तो शब्द भी पूरा नहीं हुआ।' महात्मा हीरादास के नेत्रों से गंगा-जमुना सी पावन धाराएँ निकलीं और कपोलों पर ढुलक गई। यह स्नेह की बाढ़ थी। तब सजल नेत्रों से महात्मा जी ने कहा—'मुझे महाराज जी बुला रहे हैं।'

इस पर सभी सत्संगियों ने आश्चर्य से पूछा—'महाराज ! यहाँ तो कोई नहीं आया। न हमने किसी को देखा है।' महात्मा हीरादास जी ने कहा—'भाई तुम नहीं देख सकते। मुझे आकाशवाणी हुई है। गुरुदेव ने तीन आवाजें दी हैं। इसलिए मुझे तुरन्त ही जाना है।'

लोगों ने हीरादास की बात को पाखण्ड समझा और गुप्त रूप से सत्संगियों को नाहरी भेज दिया। सत्संगी हीरादास से पहले ही सन्त आश्रम नाहरी पहुँच चुके थे। जब महात्मा हीरादास जी सन्त आश्रम नाहरी आए तो दरबार साहेब में आते ही अपने पूज्य गुरुदेव को दण्डवत् प्रणाम किया। तब श्री महाराज जी ने कहा—'हीरादास ! क्या तुमने पहली दो आवाजें नहीं सुनी थीं ?' महात्मा हीरादास जी करबद्ध खड़े खड़े हो गए और बोले—'गरीब निवाज ! आपकी पहली दोनों आवाजें मैंने सुनी थीं, मुझसे भूल हो गई, आपने जब तृतीय आवाज दी तो मैंने तुरन्त इकतारा हाथ से रख दिया और आपके पास चला आया।'

गाँवों के सत्संगियों ने जब यह दृश्य अपनी आँखों से देखा और कानों से वह वर्णन सुना तो वे फूट-फूट कर रोने लगे, और सन्त नेकीराम से क्षमा-याचना करने लगे। 'महाराज ! हमसे बड़ी भारी गलती हो गई। हम अब तक भी भ्रमान्ध थे, हमें क्षमादान दो।' उसी चमत्कार के कारण आज भी सम्पूर्ण गाँव सन्त नेकीराम का सत्संगी है।

विचार-धारा—सन्त नेकीराम आध्यात्मिक दृष्टि से उच्चतम विचार-धारा के सन्त थे। आपके उपदेशों और वाणियों में जो महान् भागीरथी प्रवाहित हो रही थी वह थी पूर्ण कर्मयोगी, गुरु की दयादृष्टि और ईश्वर-पद की प्राप्ति। यही आपके जीवन का मुख्य अनुभव था। इसी अनुभव को सार्थक बनाने का आपने अपने भक्तों को भी सांसारिक पचड़ों से विमुक्त कर ईश्वर दर्शनार्थ प्रवचन दिए थे। यद्यपि आप सन्त घीसा साहब के अनन्य शिष्य थे परन्तु फिर भी आपने सन्त घीसा साहब-जैसे फक्कड़पन को नहीं अपनाया था। और उससे थोड़ा-सा विवर्तन कर आपने योग-साधना के गाम्भीर्य में अवगाहन किया तथा मानस

निकले और मेरठ, बुलन्दशहर, मुजफ्फरनगर आदि जनपदो मे घीसा-पथ का प्रचार एवं प्रसार किया। आपकी अतिशपथ साधना से राजस्थान, मध्य प्रदेश और अन्य प्रान्तो मे भी 'घीसा-पथ' की पताका फहराने लगी।

निर्वाण—आपको अपने निर्वाण का पूर्वाभास हो गया था। एक दिन फकीरा नामक हरिजन जब सुनहरे कलाबत्तू की चित्रकारी से युक्त मनमोहक नवीन जूतो का जोडा सन्त नेकीराम जी को लाया तो उस प्रेमी की शिल्पकला की सराहना तथा जूतो की प्रशसा करते हुए भक्तो ने कहा कि महाराज जी जोडा वास्तव मे ही सुन्दर बना है। तब उन्होंने मुस्कराकर उत्तर दिया था—"कोई बात नही यह जोडा तुम्हारे पूजने तथा दर्शन करने को हो जायगा।' और दो-एक दिन बाद ही ज्येष्ठ सुदी सप्तमी सन् १९१२ ई० को मध्य रात्रि को आप इस नश्वर शरीर का परित्याग करके सत्यलोकवासी हो गए।

सन्त आश्रम नाहरी म आज भी आपकी छडी, जूते, आसन, पखा और अनेक ऐतिहासिक वस्तुएँ सुरक्षित हैं। आज भी हिन्दुस्तान के कोने कोने से अनेक भक्त आपके उक्त आश्रम पर असीम श्रद्धा के साथ आकर मस्तक झुकाते हैं। अनन्त भक्तो की भक्ति का यह ज्वार क्रमश फागुन शुदि पूर्णिमा, मिति आषाढ शुदि पूर्णिमा, मिति कार्तिक शुदि पूर्णिमा आदि पर्वो पर देखा जा सकता है। सम्प्रति आश्रम के महन्त श्री समन्दरदास जी अपने सौजन्य स 'घीसा पथ' की साहित्यिक चेतना मे अन्यतम सहयोग दे रहे हैं। यह बडे हर्ष की बात है कि आप एक कुशल नाटककार हैं। आपके नाटको मे भक्ति रस की प्रधानता है।

चमत्कार—सन्त नेकीराम ने अपने भक्तो को अनेक चमत्कार दिखाकर चमत्कृत कर दिया था। कुछ चमत्कार पठनीय हैं, जो 'जीवन गाथा' ग्रन्थ से चयनित हैं।

(१) एक बार की बात है। सन्त आश्रम निरजन मे पूर्णिमा के दिन सत्सग की समाप्ति के उपरान्त सत्सगियो मे प्रसाद बाँट दिया गया। उस सत्सग में निरजन ग्राम की भी एक स्त्री आई थी। उसने भी प्रसाद प्राप्त किया, किन्तु खाया नही। क्योकि उसने सन्त नेकीराम के उपदश मे सुना था कि जो उनका प्रसाद एक बार खा लेता है वह उन्हीका हो जाता है। इस विचार स उसने प्रसाद की उपेक्षा करके उसे भैस के कुण्ड म डाल दिया। रात्रि मे वह भैस खुल गई और कही भाग गई। भैस के चिह्नो को ढूंढते-ढूंढते उसकी खोज की तो वह भैस सन्त आश्रम मे बैठी हुई थी। तब से यह बात प्रचलित हो गई कि यह सन्त जादूगर है इसका प्रसाद नही खाना चाहिए।

(२) एक बार मेरठ जनपद की तहसील मवाना के ग्राम मीवाँ मे सन्त नेकीराम जी के शिष्य महात्मा हीरादास का सत्सग चल रहा था। इकतारे पर शब्द-वाणियाँ चल रही थी। अचानक ही महात्मा हीरादास को सन्त नेकीराम जी ने

पुकारा'—हीरादास !' परन्तु हीरादास इस आकाशवाणी पर नहीं उठे। वह सोच रहे थे कि शब्द पूरा होने के उपरान्त ही उठूंगा। उसके उपरान्त एक आवाज और आई। दो बार आवाज सुनने पर भी जब हीरादास नहीं उठे तो तीसरी बार नेकीराम जी ने कठोरता से कहा—'हीरादास ! सुना नहीं।' अब हीरादास ने तुरन्त ही इकतारा जमीन पर रख दिया और खड़े हो गए। सत्संगी कहने लगे—'महाराज ! शब्द सुनाओ खड़े क्यों हो गए ? अभी तो शब्द भी पूरा नहीं हुआ।' महात्मा हीरादास के नेत्रों से गंगा-जमुना सी पावन धाराएँ निकली और कपोलों पर ढुलक गईं। यह स्नेह की बाढ़ थी। तब सजल नेत्रों से महात्मा जी ने कहा—'मुझे महाराज जी बुला रहे हैं।'

इस पर सभी सत्संगियों ने आश्चर्य से पूछा—'महाराज ! यहाँ तो कोई नहीं आया। न हमने किसी को देखा है।' महात्मा हीरादास जी ने कहा—'भाई तुम नहीं देख सकते। मुझे आकाशवाणी हुई है। गुरुदेव ने तीन आवाजें दी हैं। इसलिए मुझे तुरन्त ही जाना है।'

लोगों ने हीरादास की बात को पाखण्ड समझा और गुप्त रूप से सत्संगियों को नाहरी भेज दिया। सत्संगी हीरादास से पहले ही सन्त आश्रम नाहरी पहुँच चुके थे। जब महात्मा हीरादास जी सन्त आश्रम नाहरी आए तो दरबार साहब में आते ही अपने पूज्य गुरुदेव को दण्डवत् प्रणाम किया। तब श्री महाराज जी ने कहा—'हीरादास ! क्या तुमने पहली दो आवाजें नहीं सुनी थीं ?' महात्मा हीरादास जी करबद्ध खड़े खड़े हो गए और बोले—'गरीब निवाज ! आपकी पहली दोनों आवाजें मैंने सुनी थी, मुझसे भूल हो गई, आपने जब तृतीय आवाज दी तो मैंने तुरन्त इकतारा हाथ से रख दिया और आपके पास चला आया।'

मीवाँ के सत्संगियों ने जब यह दृश्य अपनी आँखों से देखा और कानों से यह वर्णन सुना तो वे फूट-फूट कर रोने लगे, और सन्त नेकीराम से क्षमा-याचना करने लगे। 'महाराज ! हमसे बड़ी भारी गलती हो गई। हम अब तक भी भ्रमान्ध थे, हमें क्षमादान दो।' उसी चमत्कार के कारण आज भी सम्पूर्ण गाँव सन्त नेकीराम का सत्संगी है।

विचार-धारा—सन्त नेकीराम आध्यात्मिक दृष्टि से उच्चतम विचार-धारा के सन्त थे। आपके उपदेशों और वाणियों में जो महान् भागीरथी प्रवाहित हो रही थी वह थी पूर्ण कर्मयोगी, गुरु की दयादृष्टि और ईश्वर-पथ की प्राप्ति। यही आपके जीवन का मुख्य अनुभव था। इसी अनुभव को सार्थक बनाने का आपने अपने भक्तों को भी सांसारिक पचड़ों से विमुक्त कर ईश्वर-दर्शनार्थ प्रवचन दिए थे। यद्यपि आप सन्त घीसा साहब के अनन्य शिष्य थे परन्तु फिर भी आपने सन्त घीसा साहब-जैसे फक्कड़पन को नहीं अपनाया था। और उसमें थोड़ा सा विवर्तन कर आपने योग-साधना के गाम्भीर्य में अवगाहन किया तथा सन्त

चेतना का अकुरण कर स्वय का ईश्वर नेह की ओर अग्रसारित किया था। ऐसा कहना भी सगत नही है कि उस समय यह क्षेत्र जातिवाद, साम्प्रदायिकता और वाह्याडम्बरों-जैसी दुष्प्रवृत्तियो से बिलकुल ही शून्य था। परन्तु सन्त नेकीराम ने इन सभी कुरीतियो पर कुठाराघात क्यो नही किया ? यह प्रश्न अपने मे पारि-वेशिक पृष्ठभूमि का मूल बिन्दु है। इसका मूल कारण उक्त आडम्बरो मे से जाति-वाद और साम्प्रदायिकता जैसी जहरीली फूत्कारें थी जो कि आज भी उस क्षेत्र मे किसी भी प्रकार से शून्य नही कही जा सकती। यद्यपि सन्त नेकीराम एकजाट परिवार मे अवतीर्ण हुए थे और सम्पूर्ण हरियाणा प्रान्त मे भी इसी जाति का आधिक्य है। परन्तु जातिवाद, साम्प्र दायिकता जैसी विषाक्त रूढियो की नागिन, जो उस जाति के मानस मे अपनी केंचुली लपेटे फुफकार मार रही थी, उन फुकारों से विमुक्त होना उन लोगो के लिए निरा असम्भव ही था। यह उनकी सार्व-भौमिक चेतना, मानवीय दृष्टिकोण तथा साम्य विचार-धारा का भाव ही कहा जा सकता है। इसी कारण सन्त नेकीराम जी ने ऐसी रूढियो के खण्डन-मण्डन म विशेष रुचि न लेकर व्यावहारिक रूप मे उनकी उपेक्षा का मार्ग अपनाया। अपने दैनिक जीवन मे आपने अपने शिष्यो को गुरुमत्र के क्लोरोफॉर्म स अचेत करके योग शैया पर समाधिस्थ कर रूढियो की शल्य-चिकित्सा का नया मार्ग ज्ञात कराया था। इसी कारण 'घीसा पथ' के अनुयायी वे ही व्यक्ति थे जो ईश्वर अनुभूति की सतरगी लहरो म तैरने की उत्कट अभिलाषा रखते थे या समाजवादी आदर्शों से मानव-मानस मे नई सहानुभूति का स्वर मिलाना चाहते थे। निष्कर्षत जो व्यक्ति सच्चे अर्थो मे मानव थे या ईश्वर के अनन्य भक्त थ। सन्त नेकीराम जी मुख्य रूप स महान् योगेश्वर थे। वे अपने भक्तो को योग-साधना द्वारा ईश्वर प्राप्ति का मार्ग तथा इस जागतिक बन्धन से निर्लिप्त रहने का पथ निर्देश कर रहे थे, जिसका माध्यम उनके ज्ञानोपदेश थे, जिनमे से कुछ क साराश आपके भतीजे श्री स्वरूपसिंह जी द्वारा लिखित 'सन्त नेकीराम जी की स्वाम ए उमरी' नामक पुस्तक में उपलब्ध हैं। आपकी वाणियो की सख्या अधिक नही हैं क्योकि सन्त प्रवचनो के माध्यम से आपकी कतिपय वाणियाँ ही प्राप्त हुई हैं जो क्रमश 'जीवन गाथा', 'सन्त वीणा' और 'सन्त-शब्द तरग' आदि कृतियो मे सग्रहीत हैं। जिनके आधार पर सन्त नेकीराम की विचार-धारा को निम्न मान्यताएँ प्रदान की जा सकती हैं—

सदगुरु महिमा—सन्त नेकीराम के गुरु सन्त घीसा साहब थे, जिनकी प्राप्ति आपको ध्यान साधना मे लीन होकर हुई थी और उन्हीसे ज्ञान प्राप्त कर आपने अपन गुरु द्वारा सस्थापित 'घीसा पथ' के प्रचार एव प्रसार का बीडा उठाया था। जिस सत्गुरु की कृपा स आपने अवगत ब्रह्म के दर्शन किये थे उस गुरु-महिमा का गायन आप भला किस मूल्य पर विसर्जित कर सकते थे। आपकी

ान्यता के अनुसार गुरु से शिष्य को अपने गुणो और अवगुणो का विलोपन नही ारना चाहिए क्योकि गुरु बडे परमार्थी होते हैं। जो शिष्य सत्गुरु की शरण मे आ जाता है गुरु उस शिष्य के सभी अवगुण समाप्त कर देते हैं और उसकी जीवन नौका को भवसागर से पार लगा देते हैं।"

बाह्याडम्बरों का विरोध—सन्त नेकीराम से पहले सन्त गरीबदास ने बाह्याडम्बरो का विरोध कर उन्हे समूल नष्ट करने का जो महान् कार्य किया था वह हिन्दी साहित्य के इतिहास मे सांस्कृतिक क्रान्ति का एक स्वर्णिम अध्याय है। गरीबदास द्वारा सस्थापित 'गरीब-पंथ' हरियाणा, पजाब, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश और राजस्थान आदि प्रदेशो की परिसीमाओ का अतिक्रमण कर सम्पूर्ण भारत मे ऊर्जस्व स्थान प्राप्त कर चुका था। परन्तु यह कैसी विडम्बना है कि हरियाणा मे सन्त नेकीराम के समय मे भी बाह्याडम्बरो को लोगो ने बदरिया के मरे बच्चे को नाईं अपनी छाती से लगाए रखा था। ईश्वर-प्राप्ति के लिए कीर्त्तन, कथा-पारायण, ब्राह्मण-भोज जैसे आर्थिक अपव्यय के साधनो का अवलम्बन लिया जा रहा था। ढोंगी साधु विभिन्न प्रकार की यत्रणाओ का प्रदर्शन कर जन-मानस को मूर्ख बनाकर अर्थोपलब्धि कर अपना उल्लू सीधा करने मे लगे हुए थे। एक पैर से खड़े रहकर तप करना, व्रत रखकर तप करना, पानी मे खडे रहकर तप करना तथा भूत-प्रेत आदि का नाम लेकर विभिन्न प्रकार के जन्त्र-तन्त्र करना इनके प्रदर्शन के मूल मत्र थे। गूगापीर की छडी प्रत्येक घर मे विराज-मान थी। सयाने अनेक प्रकार के टोने-टमनो द्वारा भोले ग्रामवासियो को पाखण्ड और अनाचारो की दुविधा मे बहाए ले जा रहे थे। सन्त नेकीराम ने अपने गुरु सन्त धीसा साहब के आदेशानुसार पाखडो, अनाचारो और बाह्याडम्बरो के प्रतिकूल अपनी योग सरिता को सवेग प्रदान किया और व्यापक स्तर पर व्याप्त पीपल सींचते, जाडी" को धोक लगाने, तुलसी का पूजन करने-जैसी प्राचीन मान्यताओ का विरोध किया।"

भक्ति का महत्त्व—जन्म-जन्मान्तरो के किये हुए दुष्कर्मों के दुष्परिणाम को समाप्त करने के लिए 'राम की जरना' अत्यावश्यक है।[1] क्योकि व्यक्ति के कर्मों की मिसिल उसके साथ रहती है। उसीके अनुसार उसे फल की प्राप्ति होती है। इसी उत्थान के लिए सन्त नेकीराम ने धर्म की कमाई-जैसी उत्तम साधना की महत्ता पर विशेष बल दिया है।" ईश्वर की उपासना मे मानस-विकार प्रतिरोध उत्पन्न करते हैं। इसी कारण मानव की बुद्धि उलझी रहती है। इन विकारो के मूल कारण होते हैं—काम, क्रोध, लोभ, मोह और अहंकार। ईश्वरोपासना के लिए इन सबका निराकरण अति अनिवार्य है। ये सभी सुरति को पथभ्रष्ट करके भक्त को ईश्वर मार्ग से विमुख करते रहते हैं। व्यक्ति इन्हीं विकारो के आघातस्वरूप अपने पूर्वजन्म मे किए सत्कर्मों के सुपरिणाम से भी

वचित रह जाता है।[16] इतना ही नही ये पाँच विकार मानव के जन्म-जन्मान्तर के शत्रु हैं।[17]

विकारो से युक्त शरीर-महल को देखकर व्यक्ति अहकार मे डूबा रहता है। वह सब-कुछ भूल बैठता है कि अन्त मे उसके हाथ कुछ भी नही पडेगा।[18] स्यन्दन, गज और अश्व तथा अन्य भी बहुमूल्य वस्तुएँ यही रह जाती हैं।[19] नारी रूपी नारी को अर्थी रूपी डोली उठकर मरघटो मे चली जाती है और उसे वही पर निवास करना पडता है।[20] सासारिक सम्बन्धो के मोह मे येन केन प्रकारेण अर्थोपार्जन मे निरत व्यक्ति पाप और पुण्य से अन्तर का विस्मरण कर बैठता है। बेटा-बेटी, भाई-बहन और स्त्री के मोह पाश मे बँधा व्यक्ति भूल जाता है कि वृद्धावस्था मे सभी रिश्तो के तार जीर्ण-शीर्ण हो जायेंगे, सभी सम्बन्धी उसके मरने की ही बाट देखने लगेंगे, तब उसे ईश्वर का स्मरण आयेगा जिसका भजन उस व्यक्ति ने काम, क्रोध, अहकार, मोह और लोभ के कारण नही किया था। उस समय व्यक्ति भूल गया था कि जन्म-जन्मान्तर मे पाप और पुण्य उसकी आत्मा के साथ रहेंगे।[21]

व्यक्ति मकडी की भाँति सासारिक मोह का जाला अविरत रूप से बुनता रहता है। अनेकश सम्बन्धो के ताने-बाने मे इतना विमुग्ध हो जाता है कि वह ईश्वर का भी विस्मरण कर बैठता है। उस समय वह भूल जाता है कि यह ससार का झमेला यही रह जायगा। कोई भी सम्बन्धी साथ नही जायगा। यह हस अकेला ही बिना किसी की प्रतीक्षा के निर्बन्ध उड जायगा। किसी के रोकने से नही रुकेगा।[22]

ईश्वरोपासना—सन्त नेकीराम जी ने काम, क्रोध, लोभ, मोह और अहंकार से मुक्त होकर ईश्वर की उपासना को चार सोपानो मे विभाजित किया है। जिसका प्रथम सोपान है अन्त करण की शुद्धि। इस अवस्था मे उपासक का मन राग और द्वेष से मुक्त होना अनिवार्य है। इस स्थिति मे पहुँचते ही व्यक्ति उपासना के द्वितीय सोपान वैराग्य मे पहुँच जायगा। इस स्थिति मे उपासक को पाँच लुटेरे विकारो से विरक्ति हो जाती है और तृतीय सोपान मे उपासक मन की एकाग्रता तक आसानी से पहुँच सकता है क्योकि उपासक के मन की एकाग्रता मे बाधक यही सभी विकार होते हैं। अन्त मे भक्त अन्तिम मजिल उपासना की परिधि पर पहुँच जाता है। जहाँ से उपासक ईश्वर के दर्शन कर सकता है जिस ईश्वर का स्वरूप इस प्रकार है

अष्ट कमल दल मेल साहेब हरदम खेल अनूप है।
रहता रमता आप साहेब ना छाया ना धूप है।
नाभि-कमल स्थान जाका तुरिय तत्त्व निज धाम है।
चल हसा उस धाम पर सो बोहड़ना ऐसा दान है।

गगन मण्डल गलवाद गैंबी सोहं रूप अपार है।
'नेकीराम' उस धाम पर से अवगत का दीदार है।[11]

सारांशत: हम यह सकते हैं कि सन्त नेकीराम परम योगेश्वर थे जिन्होंने अपनी योग-साधना के द्वारा पाखण्ड-पंक में लिप्त जन-मानस में अष्ट कमल दल की गन्ध सुवासित की और थोथे कर्मकाण्डों की कपाल-क्रिया करके मानव जाति को सकीर्ण विचार-परिधि से विमुक्त किया तथा अजस्र एवं अनन्त प्रकाश-पुंज द्वारा तिमिर-भ्रमित सहस्रों भक्तों का पथ-निर्देशन किया; जिसका अनुमान आज भी 'श्री सन्त आश्रम' नाहरी में पावन पर्वों पर भक्तों की उमड़ती भीड़ से लगाया जा सकता है।

संदर्भ

१. (अ) चौ० स्वरूप सिंह जी, 'सन्त नेकीराम की स्वान-ए उमरी', पृष्ठ १।
(आ) नाहरी भाजरे में दईया भइया दहीया का जग सारा।
दहीया में कोई सहीया आवे, सोई मित्र हमारा।
नेकीराम भइया नहीं आवे, मैं मैं करता हारा।
दिल्ली माँहि दलाली कीनी, नफा नाम का सारा।
(सन्त जीतादास, श्री ग्रन्थ साहेब, २६६। २००)

२. नाहरी ग्राम दिल्ली से ठीक २० मील दूर उत्तर-पश्चिम दिशा में स्थित है। यह ग्राम उस समय दिल्ली जनपद में लगता था। प्रशासन की सुविधा के लिए जब दिल्ली प्रान्त बनाया गया तो यह गाँव जिला रोहतक में आ गया था। हरियाणा और पंजाब के विभाजनोपरान्त सम्प्रति यह गाँव सोनीपत जनपद में आ गया है। यह ग्राम नरेला (दिल्ली-४०) से तीन मील की दूरी पर दिल्ली से रोहतक और सोनीपत जाने वाली सड़क पर दाएँ हाथ पर बसा हुआ है।

३. धर्मवीर कौशिक, 'जीवन-गाथा', पृष्ठ १।

४. उपरिवत्, पृष्ठ ७।

५. बचपन में ही आपके ग्राम के जाट जमींदार छैलूराम ने वैमनस्य की धारणा से आपकी कुश्ती अधिक आयु के शक्तिशाली लड़के से कराई परन्तु आपने उसे परास्त कर दिया। छैलूराम के मन में विद्वेष की आग धधक उठी और उसने आपके साथ लाठी के प्रहार से अमानवीय व्यवहार किया। उस समय आपके शरीर से स्वर्ण स्तम्भ सदृश प्रकाश प्रकट हुआ था। यह आपका द्वितीय चमत्कार था।

६ धर्मवीर कौशिक, 'जीवन-गाथा', पृष्ठ १८

७ उपरिवत्।

८. यह पोखर छोटी झाल के नाम से पुकारी जाती थी, जो सम्प्रति तीर्थ बन गई है।

९. धर्मवीर कौशिक, 'जीवन-गाथा', पृष्ठ २३।

१०. (अ) गुरु बड़े परमार्थी, शीतल जिनके अंग।
तपत बुझावें दास की, दे दें अपना रंग।

गुरु से कुछ ना दुराइये, गुरु से झूठ ना बोल।
बुरी भली खोटी खरी, सब गुरु आगे खोल।

—सन्त नेकीराम, 'जीवन-गाथा', पृष्ठ १२१

(आ) कुछ सोच समझ ले रे सदगुरु की शरण में आ।
जीवन की मगर नैया, तुझे जो पार लगानी है।

—सन्त नेकीराम, सम्पादिका सौभाग्यवती गुप्ता, 'जीवन-गाथा', पृष्ठ १०३

११. यह शमी का वृक्ष होता है। जिसकी पूजा की जाती है। इस पर लम्बी-लम्बी फली लगती हैं जिन्हें सेंहडी कहते हैं।

१२. पीपल सींचे, जांडी घोरे, तुलसा के सिर धोय।
दूध पूत में कुशल राखिये मैं धोकूँगी तोय।

—सन्त नेकीराम, सम्पादिका सौभाग्यवती गुप्ता, 'जीवन गाथा', पृष्ठ १२६

१३. तैने 'जरना करा ना राम' का, बाकी रहना तेरे नाम का।
अरे भजन करा ना श्याम का जावे तेरी मिसल दिखाई रे।

—सन्त नेकीराम, 'जीवन-गाथा', पृष्ठ ४८, वाणी ३

१४. कहें 'नेकीराम' सुनो भाई साधो, राम नाम की पूँजी बाँधो।
कर चलो उत्तम काम, धर्म की करो कमाई रे।

—सन्त नेकीराम, 'जीवन-गाथा', पृष्ठ ४८, वाणी ४

१५. पाँचों के संग साथी बोले विषय दस रही भोग।
कभी बाहर कभी भीतर जावे चैन पड़े ना तोय।
बार-बार समझाई मेरी सुरती एक न मानी तोय।
'नेकीराम' कहें समझ लाडली, मूल ब्याज चली खोय।

—सन्त नेकीराम, 'सन्तवीणा', सम्पादिका सौभाग्यवती गुप्ता, पृष्ठ १२६

१६. काम, क्रोध, मद, लोभ लुटेरे, जन्म-जन्म के बैरी तेरे।
एक दिन हो जंगल में डेरे, खड़ी-खड़ी रोवे तेरी ब्याही रे।

—सन्त नेकीराम, 'जीवन-गाथा', धर्मवीर कौशिक, पृष्ठ ४७

१७. पाँच पच्चीसों नगर बसाया, जिन्हें देख-देख भरमाया।
तेरे हाथ कछू ना आया, तू करके चला सफाई रे।

—उपरिवत्, पृष्ठ ४८

१८. रथ, घोड़े घर हाथी कुछ दिन के हैं साथी।
आखिर को तेरी डोली अरे लोगों को उठानी है।

—उपरिवत्, पृष्ठ १०३

१९. यह बाग लगाये जो - यह महल चिनाये जो,
यह छोड़ के एक नगरी अरे जंगल में बसानी है।

—उपरिवत्, पृष्ठ १०३

२०. थर-थर काया काँपन लागी, हाल्या जाता जरा नहीं।
जिसे बुलावे कड़वा बोले, राड कटी तू मरा नहीं।
सबका पालन पोषण कीना, अपना उदर भरा नहीं।
अब कुनबे को सिर पर धर ले, भजन हरी का करा नहीं।
अब ईश्वर को याद करे है - कौन हाल हुआ तेरा।

सिर पर चक्का चढ़ा काल का आन सधी अब वही घडी।
यम के दूत तेरे घट को रोकें, दम तेर पै मोह पडी।
अपने मन में कुनबा सोचे शायद घडी में कटी लडी।
नेकीराम समझ का मेला, दुनिया देखे खडी खडी।
पाप-पुण्य तेरे साथ चलेगा होजागा कूँच सवेरा।

—सन्त नेकीराम जीवन गाथा धमवीर कौशिक पृष्ठ १६३

२१ कोई दिन का दर्शन मेला फिर उड जागा हस अकेला।
तेर सग चले ना धेला, जब आजा हुक्म तनाही र।

—यथोपरि पृष्ठ ४७

२२ सन्त नेकीराम सन्त शब्द तरग, सम्पादिका सौभाग्यवती गुप्ता पृष्ठ १५।

६

विविध

महन्त श्री प्रेमदास जी

आपका जन्म मेरठ जनपद के अन्तर्गत खेकडा नामक ग्राम मे सन् १८५० ई० मे हुआ था। आप सन्त घीसा साहब के सबसे छोटे पुत्र थे। आपसे बडे दो पुत्र श्री वृन्दावनदास और श्री केवलदास बाल्य-काल मे ही परलोकवासी हो गए। सन्त घीसा साहब का शरीर पूरा होने के उपरान्त श्री प्रेमदास सन्त दरबार खेकडा के सर्वप्रथम महन्त हुए। आप विद्वान् एव विचारशील सन्त होने के साथ-साथ कुशल वैद्य भी थे। आपने तन-मन से दरबार साहेब की सेवा की। आपके शिष्यो म श्री हरिगोपालदास का नाम प्रमुख है जिनकी शिष्य परम्परा आज भी घीसा पन्थ की कीर्ति-पताका को फहरा रही है। आपने भक्तो को ईश्वर-साधना के लिए आवश्यक शिक्षाएँ देकर उनकी भक्ति के मार्ग को सरल बनाया। हमे आपका मात्र एक पद ही उपलब्ध हो पाया है, जो अनेक पन्थ के ग्रन्थ मे सकलित है। वैसे आप द्वारा दी गई शिक्षाओं का कविता मे जो रूपान्तर किया गया है वह आपके ही अनुयायियो की श्रद्धा का फल है। आप द्वारा वे शिक्षाएँ गद्य मे ही दी गई थी।

आप फाल्गुन शुक्ला ८, सन् १९१३ को पच भौतिक शरीर का परित्याग कर सत्यलोकवासी हो गए।

सन्त द्योतरामदास

सन्त द्योतरामदास का जन्म हिसार जनपद के धनाणा नामक ग्राम मे सन् १८६६ ई० म हुआ था।[1] यह स्थान भिवानी से ११ मील की दूरी पर उत्तर दिशा मे स्थित है। जब आपकी आयु ५ वर्ष की थी तब से ही आपके हृदय में दया के भाव उत्पन्न हो गए थे। आप अपने गाँव से माँगकर पिल्लो को रोटी खिलाया करते थे। जब आपकी आयु १० वर्ष की थी तब आपके माता-पिता ने

आपको घर के काम-काज मे लगाना चाहा परन्तु आप बाल्यावस्था से ही हरिभजन म लीन थे। एक दिन घर वालों ने आपको प्रताडना देकर पशु चराने के लिए भेज दिया। वहाँ से गौओ के प्रति आपका प्रेम बढ गया और गौओ की भूख को आप सहन न कर सके। अत खडी फसल मे चराकर उनकी भूख शान्त की। इस प्रकार दिन मे आप गाय चराया करते थे और शाम को बाजार से आटा मांगकर सांडो को खिलाया करते थे। इसी प्रकार अपने कुटुम्ब मे बाल्यावस्था मे क्रीडाएँ करते हुए आप साधुओं के साथ सत्सग करते रहे।

धनाना ग्राम मे उदयपुरी नाम के एक साधु थे। उनकी सगति मे रहकर आपने 'चन्द्रोदय' नामक वेदान्त ग्रन्थ उनसे श्रवण करके सम्पूर्ण कठस्थ कर लिया था। इस प्रकार ३२ साल की उम्र तक आप साधुओ के साथ सत्सग और विचार विमर्श करते रहे। इमी बीच आपके अग्रज स्वर्ग सिधार गए। आप जीवन और मृत्यु के प्रश्न का समाधान प्राप्त करने के लिए दो साल तक घर मे ही बैठकर ईश्वरोपासना करते रहे। जब परिवार के व्यक्तियो को आप पर सन्देह होने लगा कि कही यह घर की सम्पत्ति बेचकर साधु न हो जायें। इस शका का निरसन करने लिए आपने सारी सम्पत्ति अपने परिवार जनो को दे दी और कुरुक्षेत्र मे रामरा स्थान पर निवास करने लगे। वही पर निरजन (जि० जींद) निवासी आपका भानजा सन्तू और जुगलाल आए और उन्होंने सन्त नेकीरामजी की ईश्वरीय साधना से आपका अवगत कराया। अब आपके मन म सन्त नेकीराम के दर्शनो की महत् जिज्ञासा उत्पन्न हुई और आपने निरजन आश्रम मे जाकर अपने को उनके चरणो मे समर्पित कर दिया। सन्त नेकीराम ने आपको सुरति शब्द का साधन बताया। फिर आप सन्तराम भक्त की गद्दी मे बैठकर साधना करने लगे। आप ५ वर्ष तक योग का अभ्यास करने के उपरान्त आप महान् सन्त हो गए। सन्त नेकीरामजी के सत्यलोकवासी होने के उपरान्त आपने पाण्डूपिंडारा नामक तीर्थ स्थान पर एक आश्रम की स्थापना की। यह सन् १९२० के आस पास की बात है।[1] आपकी दो साहित्यिक कृतियाँ हिन्दी साहित्य के लिए महत्त्वपूर्ण उपलब्धि हैं। प्रथम कृति 'पचयज्ञ विधान प्रकाश' गद्य विधा म प्रश्नोत्तर रूप मे लिखी गई है। इसमे आपने ब्रह्म के स्वरूप का सर्वश्रेष्ठ विवेचन किया है। द्वितीय कृति 'शब्द वाणी विकास' नाम से है। जिसका सग्रह एव प्रकाशन श्री योगानद जी के शिष्य केशवानद ने किया था और यह पुस्तक फरवरी १९५२ ई० मे प्रकाशित की गई थी। इस पुस्तक मे सन्त द्योतरामदास की लगभग एक हजार वाणियाँ और पद हैं तथा श्री योगानन्द जी के भी शब्द सकलित हैं।

इस प्रकार उपदेशो और वाणियो के माध्यम से प्रभु-भक्तो को सच्चा रास्ता दिखाकर सन् १९४४ ई० की आषाढ सुदी चतुर्थी को आप सत्यलोकवासी हो गए। इस तिथि के अवसर पर हर वर्ष इस आश्रम मे मेला लगता है और

द्वितीय मेला श्री योगानन्द जी की निधन-तिथि चैत्र मास की उतरती दशमी को लगता है।

आपके शिष्यों मे माई बख्तावरी, श्री योगानन्द जी, तीर्थानन्द जी, श्री रामानद जी, श्रद्धानन्द जी, गणेशानन्द जी आदि के नाम प्रमुख हैं। जिनमे श्री योगानन्द जी, आपके बाद इस आश्रम के महन्त बने और प्रबन्धक का कार्य माई बख्तावरी ने सँभाला। सम्प्रति इस गद्दी के महन्त नरोत्तमदास शास्त्री है।

सन्त ईश्वरदास : जीवन एवं विचार-धारा

जीवन-परिचय—सन्त ईश्वरदास का जन्म पंजाब प्रान्त के जालन्धर जनपद के घुडियाल नामक स्थान मे सन् १८७५ ई० मे पुरी राजपूत परिवार मे हुआ था। आपने १७ वर्ष की आयु तक शिक्षा ग्रहण की। आठारहवीं साल मे अध्ययन समाप्त कर दिया। क्योंकि इस समय आपके मन में आध्यात्मिक विद्या अर्जित करने की प्रबल जिज्ञासा थी। यह ईश्वर-प्राप्ति की जिज्ञासा निरंतर बलवती होती गई। यह सब आपके पूर्व जन्म के सस्कारों का ही फल था। एक दिन आपकी मुलाकात एक भक्त से हुई। आपने उनसे ईश्वर-प्राप्ति का साधन पूछा तो उन्होंने बताया कि ईश्वर की प्राप्ति गुरु के बिना असम्भव है। अतः अब आपने गुरु की खोज प्रारम्भ कर दी और एक साधु को गुरु बना लिया, जो वेदान्त मत का था। उस साधु ने आपको वेदान्त के ग्रन्थों का अध्ययन कराया और आप वेदान्त की शिक्षा मे परिपक्व हो गए। परन्तु आपको इस ज्ञान से सन्तोष नही मिला। ईश्वर-प्राप्ति की इच्छा निरन्तर बनी रही। ईश्वर की तलाश मे आपका दिल बेचैन रहने लगा। जीवन उदासीन लगने लगा।

सयोग की बात है। एक दिन आप चलते-फिरते घुडियाल के मरघट की ओर निकल गए। उस मरघट मे एक विशाल मठ था। उस मठ मे एक साधु बैठा हुआ था। आपने उस साधु को नमस्कार किया और निकट जाकर बैठ गए। उस साधु को देखते ही आपका वेदान्त का नशा समाप्त हो गया और प्रेम-भक्ति का अगाध सागर आपके दिल मे हिलोरें लेने लग गया। उस साधु से बात-चीत करके आपको जो आनन्द की अनुभूति हुई वह अकथनीय है। फिर आप उनकी सेवा में ही रहने लगे। एक दिन आपने उस साधु से कुछ उपदेश देने के लिए कहा। यह सुनकर वह साधु आँखें बन्द करके कुछ समय तक बैठा रहा, फिर आँखें खोलकर उसने कहा कि हमारे सतगुरु आपको उपदेश देंगे, मैं नही दे सकता। तब आपने उस सन्त का नाम, निशान और पता भलीभाँति पूछ लिया और आपका मन उनसे मिलने के लिए बेचैन हो उठा।

इसी बीच आपकी नियुक्ति लाहौर रेलवे कार्यालय मे लिपिक के पद पर हो गई। परन्तु आध्यात्मिक नशा अभी आपसे उतरा नही था। आपने सन्त नेकीराम

(सन्त आश्रम नाहरी) से पत्राचार किया, जिनको आप मन से गुरु मान चुके थे। यह पत्राचार दो वर्ष तक चलता रहा। तदुपरान्त आप दो मास का अवकाश लेकर आए और सन्त नेकीराम के दर्शन किए जिनके दर्शन मात्र से ही आपका दिल आध्यात्मिक ज्ञान से परिपक्व हो गया। आपको असीम आनन्द की अनुभूति हुई। इस समय आपने सन्त नेकीरामजी से 'गुरु मंत्र' भी ले लिया था और फिर नौकरी पर वापस चले गए। कई वर्ष तक आपका यही क्रम चलता रहा। उधर नौकरी भी करते रहे और इधर परम सन्त के दर्शन भी करते रहे। फिर आपके दिल म गुरु की तन से सेवा करने की इच्छा प्रकट हुई और आप नौकरी छोडकर परम सन्त क पास चले आए तथा तन-मन से उनकी शुश्रूषा करते रहे। कुछ समय व्यतीत होने के उपरान्त आपके पिताजी परम सन्त के आश्रम में पधारे और उनसे निवेदन करके आपको अपने घर वापस ले गए। घर आकर आपने सोचा कि अब रामनाम की कमाई करनी चाहिए और इन्द्रियो का दमन करने के लिए आपने कठोर तपस्या करनी प्रारम्भ कर दी। पाँचवें मास मे आपके अन्दर ब्रह्म ज्ञान की लहरें उद्वेलित होने लगी। धीरे-धीरे ब्रह्म ज्ञान का नशा परिपक्व होता गया और दिल आजादी म रहने लगा। फिर दो साल के बाद आपके अन्दर योग का अकुरण हुआ। ब्रह्म ज्ञान का नशा उतरता गया और योग का नशा उत्कर्ष की ओर चलने लगा। इस प्रकार कठिन तपस्या करते हुए आपने अपने जीवन के ग्यारह साल एक कटी मे व्यतीत किये जो आपकी तपस्या के निमित्त ही गाँव मे बाहर एकान्त मे बनाई गई थी। फिर फकीरी का नशा चढा और घर से निकलकर देश विदेश की अनेक यात्राएं की। यात्राएँ करते करते जब आप थक गए तो घुडियाल के मरघट मे उसी मठ मे जिसमें वह साधु मिला था आप ईश्वर-साधना करने लगे और ५ साल ७ मास का समय इसी मठ मे व्यतीत किया।

किसी कारणवश आप वहाँ से चले गए और होशियारपुर जनपद के मेघोवाल गजियान स्थान पर एक बरसाती नदी के पास अपने अनन्य प्रेमी के खेत में बैठ गए। वहीं पर अपना डेरा बना लिया और सिख सेवक लोग सेवा और सत्सग करने के लिए आने लगे। कुछ लोगो ने साधुवेश भी ग्रहण किया। होते होते यह एक अच्छा-खासा डेरा बन गया जिसका नाम 'रामपुरा डेरा' रखा गया। यह सन् १९३० ई० की बात है। आपने स्वय को सन्त घीसादास के खानदान का शिष्य स्वीकार किया। आपने स्वय लिखा है—"मैं अब इस डेरे मे सन्त घीसादास के खानदान का शिष्य हूँ। इस कारण यह डेरा घीसापथियो का है। यह डेरा उसी पन्थ की मर्यादा पर चल रहा है। यहाँ पर दोनों वक्त घीसा पन्थ की आरती होती है।"

आपने जालंधर जनपद की नवाँ शहर तहसील के ग्राम जगतपुरा के सत्-संगियो की बहुलता को ध्यान मे रखते हुए वहाँ पर भी एक डेरे की स्थापना की क्योंकि वहाँ के भक्त कई वर्षों से इस डेरे म आते थे।

अन्वेषण के उपरान्त हमको आपकी लगभग २०० वाणियाँ प्राप्त हुई हैं, जो गुरुमुखी लिपि म लिखी गई हैं। वैस अधिकाशत वाणियाँ हिन्दी म ही सृजित हैं जिनमे दोहा, पद, ख़याल, कुडली, गजल आदि छन्दों का प्रयोग किया गया है। अन्य कुछ वाणियाँ सरल पजाबी म हैं। आपकी इन वाणियो का एक सग्रह, जिसम सन्त घीसादास की वाणियाँ समाविष्ट हैं, 'डेरा रामपुरा' द्वारा प्रकाशित किया जा चुका है, जिसे घीसापन्थी अपना पवित्र ग्रन्थ मानते हैं।

आपकी वाणियो मे गुरु महत्ता, ईश्वर की सर्वव्यापकता, ससार के साथ अनासक्ति, काम, क्रोध, माया, मोह और अहकार के प्रति वैराग्य तथा ईश्वर साधना पर विवेचन किया गया है। बाह्याडम्बवरो से आपको तनिक भी मोह नही था। ये आडम्बर विभिन्न रूप धारण करके दिग्भ्रमित करते रहते हैं। दुनिया इन आडम्बरो मे भटकती फिरती है। कोई कागज और पत्थर की पूजा करता है। कोई तीर्थों म स्नान करता फिरता है। कोई माया के पाश म कैद है। यह कोई नही जानता कि यह सारा ससार बेगाना है। यदि अपना है तो मात्र राम नाम, जो केवल साधना के द्वारा प्राप्त किया जा सकता है। वह इन तीर्थों की यात्रा म नही मिलता। वह तो इस मानव-तन म ही है जिसके दर्शन कोई-कोई सन्त ही कर पाता है वह भी गुरु की असीम कृपा से—

गुरु ऐसा ख्याल लखाया।
मोहि देख अचम्भा आया।
नाभि कमल से पकडा हमको दसवाँ द्वार लँघाया।
त्रिवेणी की धारा चालै तामें मल-मल न्हाया।
अमी बूँद का छुट्या फुहारा तन-मन सब सियलाया।
जिन्दा जोगी नाद बजावै सोहग पद को गाया।
ज्योति झिलमिली तारा गण दरसं दिल का भरम गँवाया।
उलट कमल जब सूधा हो गया सुन्न मडल घर पाया।
'ईश्वरदास' शरण सत् गुरु की आवन जान मिटाया।

९ नवम्बर सन १९४४ ई० को सुबह सात बजे आप इस पचभौतिक शरीर का परित्याग करके सत्यलोकवासी हो गए। आपके बाद डेरा रामपुरा का कार्य-भार आपके अनन्य शिष्य श्री निरजनदास सँभाल रहे हैं। डेरा रामपुरा मे एक साल मे बारह मेले लगते हैं जिनमे होली, दीवाली के मेले बहुत बडे होते हैं। इन भक्तो की रहत मर्यादाओ मे अन्य क्षेत्रो के भक्तो की रहत मर्यादाओ से कुछ वैषम्य है अत पजाब के लोग स्वय को पजाबी घीसापन्थी कहते हैं।

महात्मा हीरादास

आपका जन्म सोनीपत जनपद के किलोडद नामक ग्राम मे २ अक्तूबर, सन् १८६१ ई० को हुआ था। आपके पिता सेठ रामजीलाल साधुओ के सत्सग मे अधिक रुचि रखते थे, जिसके परिणामस्वरूप आपने सोलह वर्ष की आयु से ही घीसापन्थानुयायियो के सत्सग मे भाग लेना प्रारम्भ कर दिया था। उस समय आपके ग्राम मे महात्मा जयचन्ददास घीसा पन्थ के एक सच्चे अनुयायी और प्रसारक थे। आपने उनको अपना गुरु मान लिया और एक समय वह आया कि आध्यात्मिक प्यास की तृप्ति के लिए आप तीन वर्ष तक जगलो मे समाधिस्थ रहे। अन्त मे अपने गुरु जयचन्द दास की आज्ञा का पालन करके आप वहाँ से अपने ग्राम मे आ गए।

आपने सम्पूर्ण भारतवर्ष मे भ्रमण करके घीसापन्थ के सिद्धान्तो का प्रचार किया और सत्सग के विकास मे पर्याप्त योगदान दिया। आप द्वारा लिखी गई 'हीरा शब्दावली' और 'हीरा रत्न माला' पुस्तकों की पाण्डुलिपियाँ आज भी विद्यमान हैं। आप लगभग ६० वर्ष तक सन्त दरबार बडवासनी (जिला सोनीपत) के माध्यम से भक्तो को सत्सग लाभ कराते रहे और अन्त मे ११ नवम्बर सन् १९८० ई० को अपने जन्म स्थान पर ही 'सत् साहेब' बोलकर अपने पच-भौतिक शरीर को त्याग दिया। इस समय सन्त दरबार बडवासनी की देख-रेख का कार्य आपके पुत्र मास्टर ओमप्रकाश गुप्त कर रहे हैं। महात्मा हीरादास द्वारा विरचित वाणियो की बानगी इस प्रकार है

हीरा दल बल देवी देवता, मात-पिता परिवार।
चलती बिरियाँ जीव को, कोई न राखन हार॥
हीरा, मोती, दूध का, इनका एक स्वभाव।
मन फाटे पाछै ना मिलै, लाखों करो उपाय॥
हीरा हरि से मिलन को, गुरु बताई राय।
जो गुरु वचन पै डट गया, सीधा अमर पुर जाय॥
हीरा जो सुख में हरि को भजै सो तो साधु जान।
विपदा मे हरि को भजै सो साधु मन जान॥
हीरा जल में रहती माछली, जल बिछुड़त जिय जाय।
ऐसे ही हरिनाम बिन, देही सूनी रह जाय॥
हीरा सन्तां सरणं जाइये हँसी करै ससार।
तेरी नाव पड़ी मँझदार मे केवट हैं दातार॥

सन्त अवगतदास

सन्त अवगतदास का जन्म सन् १८८७ ई० मे मेरठ जनपद के खेकडा नामक ग्राम मे हुआ था। आपके पिता महन्त प्रेमदास सन्त घीसा साहब के सबसे छोटे पुत्र थे, जो उनके सत्यलोकवासी हो जाने पर सन् १८६८ ई० मे 'दरबार श्री सतगुरु घीसा सन्त' मे प्रथम महन्त के रूप मे गद्दी पर आसीन हुए थे। आपका वास्तविक नाम रामकृष्णदास था। परन्तु आपको अपने पूर्वजन्म के सस्कारो का पूर्णरूपेण ज्ञान था तथा पूर्वजन्म का नाम भी ज्ञात था इसलिए आपने अपनी वाणियो मे पूर्वजन्म के नाम 'अवगतदास' का ही प्रयोग किया है। आप खेकडा मे स्थापित 'दरबार श्री सतगुरु घीसा सन्त' के द्वितीय महन्त थे। आप स्वभाव से अत्यन्त शील थे। वैद्यक से आपको अत्यन्त प्रेम था। आपके समय मे दरबार साहेब म सत्सग मे पर्याप्त अभिवृद्धि हुई। हर प्रकार के समुचित एवं श्रेष्ठ प्रवन्ध की सुविधाएँ प्रदान की गई। ध्यातव्य है कि छतरी साहब की मरम्मत आपके समय मे ही की गई थी। कुए तथा कई पक्के भवनो का निर्माण आपने ही कराया था।

आपके शिष्यो मे अवधूत नकलीदेव, श्री झड्डूदास, श्री भगवानदास, श्री राजकमलदास, जगरामदास (सूरदास), बहादुरदास तथा रमतीबाई साध्वी आदि के नाम स्मरणीय हैं।

आपके मुखारविन्द स निस्सृत वाणियाँ आपके पन्थ के 'श्री ग्रन्थ साहेब' मे सकलित हैं जिसमे सन्त घीसादास, सन्त जीतादास और सन्त अचलदास की वाणियाँ भी समाविष्ट हैं जो आपकी आध्यात्मिक विज्ञता का स्पष्ट परिचय देती हैं। सन् १६४२ ई० की पौष कृष्णा पचमी—दिन रविवार को आप अपने शरीर का परित्याग कर अनन्त ज्योति मे विलीन हो गए।

सन्त योगानन्द

आपका जन्म जीद जनपद के अन्तर्गत नन्दगाँव नामक स्थान मे सन् १८६७ ई० मे हुआ था। जब आपकी आयु २० साल की हुई तब आपने साधुओ की सगति प्रारम्भ कर दी। उन दिनो उस क्षेत्र मे सन्त नेकीराम, सन्त द्योतराम के नाम की धूम मची हुई थी और आपको जब यह पता चला कि सन्त द्योतरामदास, सन्त नेकीराम के शिष्य हैं तो आपने सन्त द्योतराम के चरणो मे स्वय को अर्पित कर अपना गुरु मान लिया। सन्त द्योतराम की महती कृपा से आप भी परम सन्त हो गए और शब्दो के माध्यम से यहाँ की जनता को ईश्वर का रास्ता बताने लगे। सन् १६४४ ई० मे जब सन्त द्योतरामदास सत्यलोकवासी हो गए तब माई वख्तावरी के अनुरोध पर आपने पाण्डु पिंडारा की गद्दी को सुशोभित

किया और अनेक शिष्यो को इस विद्या मे पारगत किया। आपके शिष्यो मे दीप्तानद जी, केशवानद जी, चेतनानद जी, कृष्णानद जी, रामेश्वरानद जी आदि के नाम विशिष्ट हैं, जिनमे आगे चलकर दीप्तानद जी की शिष्य-परम्परा ने घीसापन्थ की प्रगति के लिए पर्याप्त कार्य किया। 'शब्द वाणी विकास' नामक कृति मे आपकी अनेक वाणियाँ सकलित हैं, जिसका सग्रह एव प्रकाशन आपके ही शिष्य श्री केशवानद ने सन् १९५२ ई० म किया था।

आप चैत्र मास की सुदी १०वीं, सन् १९७३ ई० को सत्यलोकवासी हो गए। आपकी इस तिथि के अवसर पर आज भी इस आश्रम मे मेला लगता है।

महन्त श्री दिलीप साहेब

आपका जन्म सोनीपत जनपद के नाहरी नामक ग्राम मे सन् १८९९ ई० मे हुआ था। आपकी प्रारम्भिक शिक्षा गाँव मे ही हुई थी तथा आपने खरखौदा (जि० रोहतक) से एग्लो मिडिल की परीक्षा उत्तीर्ण की थी। सन् १९१२ ई० मे सन्त नेकीराम जी के सत्यलोकवासी हो जाने पर आपने प्रथम अध्यक्ष के पद को सुशोभित किया तथा उत्तर प्रदेश मे घीसापन्थ का पर्याप्त प्रसार किया। सन्त आश्रम नाहरी का स्थापत्य कला-सम्बन्धी उत्कर्ष आपके ही करकमलो द्वारा कराया गया था। सन् १९१६ ई० मे आपने सन्त नेकीराम जी की पावन स्मृति मे भव्य समाधि-मन्दिर का निर्माण कराया। आप बहुत ही सादे तथा सयमी प्रकृति के महान पुरुष थे। आप सद्गुरुदेव के आदेश तथा सिद्धान्तो मे अगाध श्रद्धा रखते थे। बहुत से सत्सगी महानुभावो ने आपसे सन्यास की दीक्षा लेकर साधु-समाज मे उच्च स्थान प्राप्त किया। राजस्थान, पजाब, दिल्ली और उत्तर प्रदेश प्रान्तो के सहस्रो नर-नारियों ने आपके उपदेश एव वाणियो से परमार्थ लाभ किया।

आप सन् १९४४ ई० की जेठ वदी १०वी को निर्वाण पद को प्राप्त हुए। जब भक्त-जन आपसे वाणियो के उच्चारण के लिए अनुरोध किया करते थे तो आप प्राय. यही कहा करते थे—"हमारे महन्त सन्तो ने अनेक कुए खोदे हैं आत्मा की प्यास तो उन्ही के नीर से बुझाई जा सकती है, अब और नये कुएँ की क्या आवश्यकता है।" इसीलिए आपने मात्र दो-एक ही वाणियो की रचना की थी। बानगी इस प्रकार है :

सौदागर सन्त सुजान,
हस कोई सौदा ले।
हंसा होई सो सौदे ने पावे,
तन मन धन अर्पण कर दे।

इस सौदे ने ले कोई सूरमा,
जीवतड़े जग मे मर गये।
हीरे मोती ले लो बहुतेरे,
सिर साटे से लाल मिले।
नेकीराम सौदागर पूरे,
'साहेब दलीप' हेला दे रहे।

स्वामी चैतन्यदेव 'निर्वाण'

श्री 'निर्वाण' जी का जन्म सोनीपत जनपद में फरमाना ग्राम में १९०८ ई० में हुआ था। आपकी माता का नाम वृद और पिता का नाम रामप्रसाद था, जो आपके बचपन म ही स्वर्ग सिधार गए थे और आप निराश्रित थे। यह एक सयोग की बात है कि आप सन्त छोटूदास के शिष्य श्री हरिदास के शिष्य हो गए और उनकी छत्रछाया मे आपका आध्यात्मिक ज्ञान चरमोत्कर्ष तक पहुँच गया। यह वार्ता आपने अपन ग्रन्थ 'गुरुदेव घीसा साहब का जीवन चरित्र' म भी अन्तर्साक्ष्य के रूप में स्वीकार की है—

पिता राम माता वृद आमि। दोऊ कर जोड़ ताहि प्रणामि ॥
प्रारब्ध कर्म देह जिन छारे। यतीम छोड गये भाग्य हमारे॥
तिनका राह ज्ञान मय होई। इच्छा पूर गुरुवर अर्जोई ॥
समर्थ गुरु हरिहर दयाला। चेतन लाल चन्हे चरण खाला ॥'

आप 'घीसापन्थ के मूर्धन्य विद्वान थे, इस बात का प्रमाण आप द्वारा लिखित ग्रन्थ 'गुरु घीसा साहब का जीवन-चरित्र' और 'बीजक सार-सम्बन्ध' के अवलोकन स मिलता है। इनम प्रथम ग्रन्थ काव्यरूप मे है, जिसम घीसापन्थ के सभी सन्तो का जीवन चरित्र कविता मे दिया गया है। और द्वितीय ग्रन्थ मे सन्त घीसा साहब और सन्त कबीर साहब की गूढ वाणियो की तुलनात्मक एव दार्शनिक व्याख्या की गई है। प्रथम पुस्तक का प्रकाशन सन् १९४६ ई० मे श्री रतीराम मौजी और श्रीमती माई छन्नो देवी के प्रकाशन उत्तरदायित्व मे हुआ था और इसका मुद्रण श्री कबीर प्रेस, 'चेतन धाम,' सीयाबाग—बडोदा (गुजरात) से प० मोतीदास चेतनदास की देख-रेख में हुआ था। इस ग्रन्थ की भूमिका तत्कालीन सन्त घीसा साहब दरबार खेकडा के महन्त श्री अचलदास ने लिखी थी। द्वितीय पुस्तक का प्रकाशन सन् १९४६ ई० मे साधु सालिकदास और चौधरी देशराज पच के प्रकाशन उत्तरदायित्व मे हुआ था जिनका सम्बन्ध दरबार घीसा सन्त खेकडा स ही था।

इस प्रकार घीसा पन्थ को पर्याप्त साहित्यिक योगदान देकर आप १९५३ मे सत्यलोकवासी हो गए।

महन्त अचलदास

आपका जन्म सन्त घीसा साहब के वंश में मेरठ जनपद के खेकडा नामक ग्राम में सन् १८२४ ई० में हुआ था। आप दया, विनम्रता, शील, सन्तोष और क्षमा के साक्षात् अवतार थे। आपने अपने समय में सत्गुरु घीसा सन्त साधु साश्रम की छतरी साहब को संगमरमर से विभूषित कराया था। आपने ३१ वर्ष की उम्र में ही भौतिक शरीर का परित्याग करके निर्वाण पद को प्राप्त किया था। ध्यातव्य है आप इस आश्रम के तृतीय महन्त थे। यह घीसापन्थ का एक दुर्भाग्य ही कहा जा सकता है कि आपके उपरान्त इस आश्रम की बागडोर आपके पाँच वर्षीय इकलौते पुत्र जितेन्द्रदास को सँभालनी पड़ गई। इन सुकोमल करकमलों के अनुरक्षण में यहाँ का आश्रम कलात्मक उत्कर्ष तक नहीं पहुँच पाया और जब वे इस कार्य को सँभालने योग्य हुए तो सन् १९८० ई० से अचानक ही अदृश्य हो गए और अभी तक उनका कोई पता नहीं है। इस समय यहाँ की गद्दी का प्रबन्ध तथा संरक्षण माई सुशीलादेवी के हाथों में है।

सन्त मंगतदास

सन्त मंगतदास का जन्म मेरठ जनपद के गागडोली नामक ग्राम में एक क्षत्रिय परिवार में सन् १८९४ ई० में हुआ था।* आपके पिता चौ० नरपतसिंह तथा माता श्रीमती फूलकुमारीदेवी दोनों ही अत्यन्त शील एवं उदार स्वभाव के थे, जिनका सात्विक प्रभाव आपको भी अप्रभावित न रख सका। अपने स्वभाव तथा कार्यप्रणाली में आपने बचपन से ही लोगों को अपनी असाधारण प्रतिभा का परिचय देना प्रारम्भ कर दिया था। आपके वैराग्य की भी एक चमत्कारी कहानी है। जब आपकी आयु २४ वर्ष की थी उस समय महामारी विकराल रूप धारण करके द्वार-द्वार पर अपना ताण्डव नृत्य कर रही थी जिसके कारण जीवों की मृतक संख्या दिन-रात बढ़ती जा रही थी। एक दिन वह आया कि आप भी इसके शिकार बन गए। इस दुर्घटना से सम्पूर्ण गाँव शोक की लहर से काँप गया। सारे गाँव पर आतंक का कुहासा छा गया। तदुपरान्त जब आपके अन्तिम संस्कार की हिन्दू प्रथा के अनुसार दाह की तैयारी की जाने लगी तब अचानक आपकी प्राणधारा लौट आई। लोगों के आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहा। आपको जमीन से उठाकर चारपाई पर लिटा दिया गया। कुछ समय पश्चात् नाड़ी गति सुचारु रूप से गतिमान हो गई और आप होश में आ गए। जब राजे भक्त ने आपसे पूछा कि भाई आपने वहाँ क्या देखा। तब आपने उत्तर दिया कि मुझे दो यमदूत पकड़कर धर्मराज के दरबार में ले गए। धर्मराज ने मुझे देखकर अपने दूतों से कहा कि इसे वहीं छोड़ आओ तथा नरक भी दिखा दो। फिर मुझे यम के दरबार

मे ले जाया गया। वहाँ हाहाकार मच रहा था। जीवो को नाना प्रकार का त्रास दिया जा रहा था, जो असहनीय था। इतनी बात बताकर आपने राजे भक्त से पूछा कि आपके गुरु हरिगोपाल दास कहाँ हैं। राजे भक्त ने कहा कुटी पर। तब मगतराम ने साश्चर्य कहा अरे भाई उनको तो अभी मैंने धर्मराज के दरबार मे आसन पर विराजमान देखा है। मुझे उनकी शरण मे ले चलो! मैं आज से ही उनका हो चुका हूँ। परिणामस्वरूप आप गुरु धारण करने के लिए अत्यन्त बेचैन हो उठे और राजे भक्त के साथ चलने के लिए खड़े हो गए। इस घटना के बाद आप श्री हरिगोपालदास की शरण मे आ गए थे। यह सन् १९१८ ई० की बात है। इस विषय मे आपके शिष्य श्री गगादास का कथन साक्ष्य है

हरि गुपाल सत् गुरु मिले दीनी सैन लखाय।

अपने शिष्य मगतराम को दीक्षा मन्त्र देने के एक वर्ष के उपरान्त ही श्री हरिगोपालदास अमरलोकवासी हो गए। इस गुरु-विछोह ने आपके अन्त करण को एक असहनीय वेदना से झकझोर दिया। धीरे-धीरे आप आध्यात्मिक चिन्तन की गहराइयो मे झाँकने लगे और अपने गुरुभाई रामसिंह भक्त और राजे भक्त के साथ इधर-उधर सत्सग और भडारो मे जाकर धर्म-प्रचार करने लगे। आपकी विचार धारा वृत्ति राग से विमुक्त होकर वैराग्य मे लीन हो गई, ! घर का परित्याग करके आप अज्ञात की खोज मे निकल पड़े। इस बीच मे आपने पजाब, हरियाणा राज्यो का भ्रमण किया और हरिद्वार आ गए। कुछ दिन हरिद्वार रहने के बाद छपार (मुजफ्फरनगर) होते हुए नन्हेड़ा ग्राम (मुजफ्फरनगर) मे आ गए। इस ग्राम मे गगासहाय भक्त के मकान पर सत्सग हो रहा था। आपके दर्शन करते ही भक्त गगासहाय ने पहचान लिया कि ये वास्तव मे ही कोई महान सन्त हैं। एक रात वहाँ रुककर आप दोनो साधुओ सहित वहाँ स चले आए। आप तो रास्ते मे ही एक कुटी मे ठहर गए और दोनो साधु चले आए।

अगली रात्रि को गहरी निद्रा मे जब भक्त गगासहाय लीन थे तब उन्हें सत मगतराम का चतुर्भुजी रूप दिखाई दिया। जब निद्रा टूटी तो उनके आश्चर्य का ठिकाना न रहा। प्रेम की बाढ से नैनो से नीर का सोता झरने लगा। प्रेम की कहानी अकथ्य है। तीसरे दिन सत मगतदास स्वत भक्त के घर पर विराजे। इस समय भक्त ने आपके चरण पकड लिए। यही पर सन्त मगतदास को आत्मदर्शन हुए थे और अनुभव वाणियो के माध्यम से भक्त गगासहाय को समझाया।

सम्प्रति आप 'सन्यास आश्रम' किवाना (जि० मुजफ्फर नगर) के माध्यम से अनेक भक्तो को इस भवसागर से तरने के लिए शब्द, वाणियो द्वारा उपदेश देते रहते हैं। आप स्वभाव से अत्यन्त कोमल और कर्मठ एव महान् सन्त हैं। आपने अपने मुखारविन्द से सहस्रो वाणियाँ कही हैं जिनमे से कतिपय वाणियाँ

'ग्रन्थ सार' (प्रथम भाग) के रूप मे प्रकाशित हो चुकी हैं। आपके शिष्य स्वामी गगादास भी अनेकश वाणियो का सृजन कर भक्तो को सच्चा रास्ता दिखा रहे हैं। यहाँ यह ध्यातव्य है कि सन्त हरिगोपालदास खेकडा दरबार साहेब के प्रथम महन्त प्रेमदास के शिष्य थे। श्री हरिगोपाल दास के शिष्यो मे श्री रामदास, श्री बलजीतदास तथा श्री मगतदास के नाम विशिष्ट हैं। जिन्होने घीसा पन्थ के उत्कर्ष मे अनन्य योगदान किया है। इस शिष्य-परम्परा का वर्णन सन्त मगतदास द्वारा लिखित 'ग्रन्थ सार' मे इस प्रकार दिया गया है :

हर गोपाल पथ के साधु, ना कुछ छल बाजीगर जादू।
प्रेमदास पूर्ण हुए वक्ता, घीसा सन्त रजा में रखता।
कोटम कोट हुए ब्रह्मज्ञानी सबकी लागी एक निशानी।
रामदास हुई रजा गुसाई, सुबह शाम प्रभाती गाई।
बल की जीत निरय प्रकाशा, शून्य समाधि देख तमाशा।
मगत संत अतिथितुरिया, अखण्ड उजाला देखी धुरिया।[1]

अवधूत शिरोमणि चन्दनदेव जी

आपका जन्म मेरठ जनपद के लोदीपुर छपका नामक स्थान मे हुआ था, जो आजकल गाजियाबाद जनपद मे है। आपने मुजफ्फरनगर जनपद के अन्तर्गत स्थित किवाना नामक ग्राम मे कृष्णा नदी के तट पर श्मशानो मे काफी तपस्या की। आप सन्त नक्लीदेव जी के अनन्य शिष्य हैं। आपने अपनी अलौकिक प्रतिमा के बल पर तप, योग, ज्ञान और तितिक्षा के क्षेत्र मे भारतवर्ष के सभी प्रान्तो मे ख्याति अर्जित की है। पजाब, राजस्थान, उत्तर प्रदेश, दिल्ली, पश्चिम बगाल आदि प्रान्तोंकी जनता सहस्रों की सख्या मे आपमे गुरु भाव रखती है। आपके दर्शन मात्र से ही जन साधारण को अत्यन्त शान्ति की अनुभूति होती है। आपने अनेक गृहस्थो के साथ-साथ साधुओ को भी आध्यात्मिक विद्या का अध्ययन कराया था[1] और उन्हे सत्यपथ की ओर अग्रसर किया था। निष्पक्ष एव मानवतावादी उपदेशो के कारण सभी सम्प्रदायो के भक्तजन आपके प्रति अत्यन्त श्रद्धा भाव रखते है। जिस समय सन् १९५० ई० मे सर्वप्रथम घीसापन्थ के पूज्य ग्रन्थ 'सचित्र ग्रन्थ साहेब' का प्रकाशन हुआ था, तब आप श्री गणेश मोहता के पास लगभग एक मास तक कलकत्ता रहे थे। वहाँ आपकी देख-रेख मे इस ग्रन्थ का प्रकाशन हुआ था। ध्यातव्य है कि उक्त महान् ग्रन्थ सम्पादक श्री गणेश मोहता द्वारा आपको ही समर्पित किया गया था। आज भी आपके अनेक शिष्य विभिन्न स्थानो पर घीसापन्थ की प्रगति मे साधक बने हुए हैं। आप द्वारा विरचित एक ही वाणी प्राप्त हुई है जो इस प्रकार है .

जाग मुसाफिर जाग बहुतेरे दिन सो लिया ।
लख चौरासी भोग कर पाया मनुष्य शरीर ।
अब तो मौका लग रहा तेरा करो भजन मे सीर ॥
दाग दिलों का धो लिया ।१।

बालापन हँस खेल गँवाया, जवानी में हो रहा चूर ।
वृद्ध हुआ तो पड़ा खाट मे पड़े शीश में धूर ॥
अन्त में रो लिया ।२।

मेरी मेरी क्या करता डोले, बिन समझे अज्ञान ।
इसमे तेरा कुछ नहीं लग रहा निश्चय करके जान ॥
वृथा बोझा ढो लिया ।३।

सन्त समागम हरिकथा जो सुनते चित लाय ।
पाप कपट व्यापै नहीं हृदय शुद्ध हो जाय ॥
ज्ञान का दीपक जो लिया ।४।

जलचर, थलचर, भूचर, नभचर जितना जीव रचाया ।
सभी चबीणा काल का रहन कोई नहीं पाया ॥
तन्त सब टोह लिया ।५।

धन, जोवन यों जायगा जैसे उड़े कपूर ।
चेता जा तो चेत बावरे सिर पर यम रहा घूर ॥
मार्ग में काटा बो लिया ।६।

कहनी थी सो कह दई समझे चातुर सोय ।
चन्दन देव के सतगुरु स्वामी दिये मर्म सब खोय ॥
शरण गुरु की हो लिया ।७।

महन्त समन्दरदास

आपका जन्म हरियाणा प्रान्त के सोनीपत जनपद के नाहरी ग्राम मे १२ अक्तूबर सन् १६२० ई० का हुआ था, प्रारम्भिक शिक्षा से लेकर एंग्लोमिडिल तक आपकी शिक्षा का केन्द्र अपना ग्राम ही रहा। १८ वर्ष की उम्र मे आपने नरेला से मैट्रिक की परीक्षा उत्तीर्ण की। इसके उपरान्त सन् १६४१ ई० मे आपने दिल्ली के रामजस कालेज दरियागज से एफ० ए० की परीक्षा उत्तीर्ण

की। सन् १६४४ मे आपका चयन लैफ्टिनेण्ट पद पर हो गया। एक मास के प्रशिक्षण के उपरान्त ही सन्त आश्रम नाहरी के प्रथम महन्त श्री दलीप साहब के सत्यलोकवासी हो जाने पर इस आश्रम के साधु और सत्सगियो ने यहाँ के उत्तरदायित्व का पुनीत कार्य आपसे सँभालने का आग्रह किया। आपने अपनी नौकरी छोड दी और आश्रम मे आ गए। आप उच्चकोटि के दार्शनिक एव विद्वान् हैं। आप आधुनिक युग की विचार-धारा के समर्थक हैं। आपका ध्यान सदैव आश्रमो की उन्नति और सन्तमत के प्रचार एव प्रसार मे लगा रहता है। आपसे बहुत से व्यक्तियो ने सन्यास की दीक्षा लेकर साधु समाज म उच्च स्थान प्राप्त किया। आपके दिशा निर्देशन मे घीसापन्थी साहित्य का जो लेखन हुआ है वह आपकी साहित्यिक जागरूकता का ही प्रतीक है। आपकी उदारता, कृपालुता और महत्ता का अनुमान सन्त आश्रम नाहरी मे पर्व के अवसर पर सत्सगियों और साधुओ की उमडती हुई भीड से लगाया जा सकता है।

स्वामी आत्मप्रकाश जी

आपका जन्म मेरठ जनपद के बिजरौल नामक स्थान मे सन् १६२३ ई० मे हुआ था। आपकी शिक्षा-दीक्षा बडौत मे हुई थी। यहाँ से बी० ए० तक शिक्षा प्राप्त करने के उपरान्त आप साधुओ की सगत मे पड गए और स्वामी बलजीतदास परमहस से आध्यात्मिक दीक्षा ग्रहण करके उच्चकोटि के दार्शनिक सन्त हो गए। आपने अनेक पुस्तको का लेखन करके भक्तो को सत्यपथ की ओर ले जाने का महान् कार्य किया है। आपकी पुस्तको मे 'मानवता रहस्य', 'मानव का कर्त्तव्य', 'रामायण रहस्य' (तीन भागो मे), 'साधना रहस्य', 'विचार-माला', 'याद रखो' और 'ज्ञान-अमृत' प्रभृति के नाम प्रमुख हैं। आप उच्च कोटि के सन्त एव कवि भी हैं। 'ज्ञान अमृत' पुस्तक आपकी २०६ वाणियो की एक सशक्त रचना है, जिसकी लोकप्रियता का अनुमान उसके छ सस्करणो से लगाया जा सकता है। सम्प्रति आप टिहरी गढवाल जनपद के अन्तर्गत लक्ष्मण झूला के निकट स्थित 'श्री बलजीत आनन्द धाम' के सस्थापक एव सचालक हैं जहाँ अनेक भक्त आपके दर्शन करके अपनी क्षुधा-तृप्ति करते हैं। इस आश्रम की स्थापना आपके अथक परिश्रम से १ अप्रैल, सन् १६६८ ई० को हुई थी।

आचार्य जगदीश मुनि

आचार्य जगदीश मुनि का जन्म हिसार जनपद के अन्तर्गत मुगलपुर नामक स्थान मे २ जुलाई, सन् १६३८ ई० को हुआ था। आपके पिता श्री जयलाल ऋषि और माता श्रीमती चन्दनदेवी अत्यन्त ही उदारवृत्ति के थे। आपने श्री सरस्वती

संस्कृत कालिज खन्ना, पजाब से शास्त्री की परीक्षा उत्तीर्ण करने के बाद पजाब विश्वविद्यालय चण्डीगढ से दर्शनाचार्य की परीक्षा उत्तीर्ण की। फिर सम्पूर्णानन्द विश्वविद्यालय वाराणसी से प्रथम श्रेणी मे वेदान्ताचार्य की परीक्षा उत्तीर्ण की। आपने श्री स्वरूपानद जी से भेष ग्रहण किया था और उन्हीकी प्रेरणा से सन् १६७६ ई० मे हरिद्वार के भीमगोडा स्थान पर 'सन्त मडल आश्रम' की स्थापना की। इस आश्रम के द्वारा साधुओ व ब्रह्मचारियो को नि शुल्क शिक्षा प्रदान करना, अपग, असहाय और अनाथो की सभी प्रकार से सहायता करना, यात्रियो के लिए नि शुल्क आवास की व्यवस्था करना, गौशाला का सचालन करना, श्री स्वरूपानन्द महाविद्यालय के द्वारा शिक्षा की योजना तैयार करना आदि भूमिकाओ का निर्वाह किया जा रहा है। उल्लेखनीय है कि 'श्री स्वरूपानन्द महाविद्यालय' का शिलान्यास १३ अप्रैल सन्, १६८१ को मेरठ मडल के आयुक्त श्री रामदास सोनकर के करकमलो द्वारा किया गया था। आचार्य जी 'घीसापन्थ' के मर्मज्ञ होने के साथ-साथ एक अच्छे लेखक भी हैं। आपने 'प्रज्ञानन्द टीका' का संस्कृत से हिन्दी में अनुवाद किया है। सन्त गरीबदास के जीवन-परिचय के सम्बन्ध मे भी आपके सम्पादन मे एक पुस्तक प्रकाशित हुई है, 'भारत की आध्यात्मिक विभूतियाँ एव कुम्भ पर्व' नामक ग्रन्थ मे आपका 'घीसापन्थ' से सम्बन्धित एक लेख भी प्रकाशित हुआ है। इसके साथ ही आपके लेख 'गीता धर्म' (हिन्दी मासिक,) 'हिन्दू चेतना' (हिन्दी मासिक) और अन्य साहित्यिक पत्र एव पत्रिकाओ मे प्रकाशित होते रहते हैं। आप एक अच्छे सन्त हैं, जो समय समय पर वाणियो द्वारा भक्तो का मार्गदर्शन करते रहते हैं। सम्प्रति आप 'सन्त मडल आश्रम ट्रस्ट भीमगोडा, हरिद्वार' के अध्यक्ष हैं।

अन्य साहित्य सेवी

उपरोक्त सन्त कवियो ने अनेकश वाणी और पदो के माध्यम से घीसापन्थ के सैद्धान्तिक प्रतिपादन मे जो गति प्रदान की वह सन्त साहित्य मे एक नूतन और स्वर्णिम अध्याय है। इन सन्त कवियो की जीवनी और साहित्य लेखन मे जिन पन्थानुयायियो ने साहित्यिक अनुष्ठान किये हैं उनमे सर्वश्री स्वरूपसिंह का नाम उल्लेखनीय है। ये सन्त नेकीराम के भतीजे थे आपने 'श्री सन्त नेकीराम जी स्वान-ए ऊमरी' नामक पुस्तक सर्वप्रथम सन् १६३४ ई० मे उर्दू मे लिखी थी। आपके बाद सन्त आश्रम नाहरी, जि० सोनीपत के ही महात्मा मामचन्द दास ने उक्त पुस्तक का हिन्दी मे अनुवाद किया। जो 'सन्त नेकीराम जी की जीवनी' नाम से प्रकाशित हुई।

सन् १६५६ ई० मे अवधूत चन्दनदेव जी की देख-रेख मे श्री गणेशलाल मोहता ने 'सचित्र ग्रन्थ साहब' का जो श्रेष्ठ सम्पादन किया वह वास्तव मे ही

एक साहित्यिक प्रगति का प्रतीक है। इनके अतिरिक्त श्री धर्मवीर कौशिक और श्रीमती सौभाग्यवती देवी गुप्ता के साहित्यिक प्रयासो को भी विस्मृत नही किया जा सकता है। उनका परिचय इस प्रकार है।—

श्री धर्मवीर कौशिक

आपका जन्म मेरठ जनपद के सौंदा ग्राम मे १२ जुलाई, सन् १९११ ई० को हुआ था। अब यह ग्राम गाजियाबाद जनपद मे है। सन् १९३० और ३१ मे आपने स्वतन्त्रता आन्दोलन मे डटकर भाग लिया। आपने सन् १९५० ई० मे 'सन्त शब्द तरग' नाम से सन्तो की वाणियो का सकलन किया, जो सन्त आश्रम नाहरी (सोनीपत) के प्रकाशन मे प्रकाशित हुआ था। द्वितीय वाणी सग्रह 'सन्त वीणा' नाम से सन् १९५६ ई० मे प्रकाशित हुआ था। इसके बाद आपने 'जीवन गाथा' नाम से सन्त नेकीराम का जीवन चरित्र लिखकर प्रस्तुत किया जो, सन् १९७४ ई० मे उक्त आश्रम की तरफ से प्रकाशित किया गया था। ध्यातव्य है इन तीनो पुस्तको का सम्पादन श्रीमती सौभाग्यवती गुप्ता ने किया था। श्री कौशिक जी, महन्त समन्दर दास के अन्यतम शिष्य हैं।

श्रीमती सौभाग्यवती देवी गुप्ता

आपका जन्म १४ जनवरी, सन् १९१४ ई० को भरतपुर रियासत मे हुआ था। आपके पिता लाला रघुनाथसहाय उसी रियासत म डिप्टी कलक्टर थे। आपने आर्य कन्या पाठशाला भरतपुर मे हाई स्कूल तक शिक्षा प्राप्त की। सन् १९२९ ई० मे आपका विवाह दिल्ली के निवासी लाला विद्याधरजी के साथ सम्पन्न हो गया।

यहाँ आने पर सन्त आश्रम नाहरी के तत्कालीन महन्त श्री दलीप साहेब का यश आपने सुना और इसका परिणाम यह हुआ कि आप उनके सतसगो मे जाने लगी। आपने श्री धर्मवीर कौशिक द्वारा लिखित सभी पुस्तको का श्रेष्ठतम सम्पादन किया और सन् १९६० ई० मे स्वय के सम्पादन म 'सतगुरु के अज्ञात प्रेमी के पत्र' नामक कृति का प्रकाशन भी किया। आपके सम्पादन के बल पर ही 'सन्त समागम' नामक त्रैमासिक पत्रिका का प्रकाशन अगस्त १९५९ ई० से सन् १९७४ ई० तक सफलतापूर्वक चलता रहा। इस पत्रिका का सत्सगियों मे बडा स्वागत किया गया। परन्तु कतिपय विषम परिस्थितियों के कारण इसका प्रकाशन स्थायी रूप से नहीं चल पाया।

उपरोक्त सन्त कवियो और साहित्यकारों के अतिरिक्त अनेक घीसापन्थी सन्त एव भक्त आज भी विभिन्न विधाओ मे लेखन करके इस पन्थ की गरिमा

संस्कृत कालिज खन्ना, पंजाब से शास्त्री की परीक्षा उत्तीर्ण करने के बाद पंजाब विश्वविद्यालय चण्डीगढ़ से दर्शनाचार्य की परीक्षा उत्तीर्ण की। फिर सम्पूर्णानन्द विश्वविद्यालय वाराणसी से प्रथम श्रेणी में वेदान्ताचार्य की परीक्षा उत्तीर्ण की। आपने श्री स्वरूपानंद जी से भेष ग्रहण किया था और उन्हीं की प्रेरणा से सन् १९७६ ई० मे हरिद्वार के भीमगोडा स्थान पर 'सन्त मडल आश्रम' की स्थापना की। इस आश्रम के द्वारा साधुओ व ब्रह्मचारियों को नि शुल्क शिक्षा प्रदान करना, अपग, असहाय और अनाथो की सभी प्रकार से सहायता करना, यात्रियों के लिए नि शुल्क आवास की व्यवस्था करना, गौशाला का सचालन करना, श्री स्वरूपानन्द महाविद्यालय के द्वारा शिक्षा की योजना तैयार करना आदि भूमिकाओ का निर्वाह किया जा रहा है। उल्लेखनीय है कि 'श्री स्वरूपानन्द महाविद्यालय' का शिलान्यास १३ अप्रैल सन्, १९८१ को मेरठ मडल के आयुक्त श्री रामदास सोनकर के करकमलों द्वारा किया गया था। आचार्य जी 'घीसापन्थ' के मर्मज्ञ होने के साथ-साथ एक अच्छे लेखक भी हैं। आपने 'प्रज्ञानन्द टीका' का सस्कृत से हिन्दी में अनुवाद किया है। सन्त गरीबदास के जीवन-परिचय के सम्बन्ध में भी आपके सम्पादन मे एक पुस्तक प्रकाशित हुई है, 'भारत की आध्यात्मिक विभूतियाँ एव कुम्भ पर्व' नामक ग्रन्थ में आपका 'घीसापन्थ' से सम्बन्धित एक लेख भी प्रकाशित हुआ है। इसके साथ ही आपके लेख 'गीता धर्म' (हिन्दी मासिक,) 'हिन्दू चेतना' (हिन्दी मासिक) और अन्य साहित्यिक पत्र एव पत्रिकाओं मे प्रकाशित होते रहते हैं। आप एक अच्छे सन्त हैं, जो समय-समय पर वाणियो द्वारा भक्तो का मार्गदर्शन करते रहते हैं। सम्प्रति आप 'सन्त मडल आश्रम ट्रस्ट भीमगोडा, हरिद्वार' के अध्यक्ष हैं।

अन्य साहित्य सेवी

उपरोक्त सन्त कवियो ने अनेकश वाणी और पदो के माध्यम से घीसापन्थ के सैद्धान्तिक प्रतिपादन में जो गति प्रदान की वह सन्त साहित्य म एक नूतन और स्वर्णिम अध्याय है। इन सन्त कवियो की जीवनी और साहित्य लेखन मे जिन पन्थानुयायियो ने साहित्यिक अनुष्ठान किये हैं उनमे सर्वश्री स्वरूपसिंह का नाम उल्लेखनीय है। ये सन्त नेकीराम के भतीजे थे आपने 'श्री सन्त नेकीराम जी स्वान-ए ऊमरी' नामक पुस्तक सर्वप्रथम सन् १९३४ ई० मे उर्दू मे लिखी थी। आपके बाद सन्त आश्रम नाहरी, जि० सोनीपत के ही महात्मा मामचन्द दास ने उक्त पुस्तक का हिन्दी मे अनुवाद किया। जो 'सन्त नेकीराम जी की जीवनी' नाम से प्रकाशित हुई।

सन् १९५६ ई० मे अवधूत चन्दनदेव जी की देख-रेख में श्री गणेशलाल मोहता ने 'पवित्र ग्रन्थ साहब' का जो श्रेष्ठ सम्पादन किया वह वास्तव में ही

एक साहित्यिक प्रगति का प्रतीक है। इनके अतिरिक्त श्री धर्मवीर कौशिक और श्रीमती सौभाग्यवती देवी गुप्ता के साहित्यिक प्रयासो को भी विस्मृत नही किया जा सकता है। उनका परिचय इस प्रकार है।—

श्री धर्मवीर कौशिक

आपका जन्म मेरठ जनपद के मोदा ग्राम म १२ जुलाई, सन् १६११ ई० को हुआ था। अब यह ग्राम गाजियाबाद जनपद मे है। सन् १६३० और ३१ मे आपने स्वतन्त्रता आन्दोलन मे डटकर भाग लिया। आपने सन् १६५० ई० मे 'सन्त शब्द तरग' नाम से सन्तो की वाणियो का सकलन किया, जो सन्त आश्रम नाहरी (सोनीपत) के प्रकाशन मे प्रकाशित हुआ था। द्वितीय वाणी सग्रह 'सन्त वीणा' नाम से सन् १६५६ ई० मे प्रकाशित हुआ था। इसके बाद आपने 'जीवन गाथा' नाम से सन्त नेकीराम का जीवन चरित्र लिखकर प्रस्तुत किया जो, सन् १६७४ ई० मे उक्त आश्रम की तरफ म प्रकाशित किया गया था। ध्यातव्य है इन तीनो पुस्तको का सम्पादन श्रीमती सौभाग्यवती गुप्ता ने किया था। श्री कौशिक जी, महन्त समन्दर दास के अन्यतम शिष्य हैं।

श्रीमती सौभाग्यवती देवी गुप्ता

आपका जन्म १४ जनवरी, सन् १६१४ ई० को भरतपुर रियासत मे हुआ था। आपके पिता लाला रघुनाथसहाय उसी रियासत म डिप्टी कलक्टर थे। आपने आर्य कन्या पाठशाला भरतपुर म हाई स्कूल तक शिक्षा प्राप्त की। सन् १६२६ ई० मे आपका विवाह दिल्ली के निवासी लाला विद्याधरजी के साथ सम्पन्न हो गया।

यहाँ आने पर सन्त आश्रम नाहरी के तत्कालीन महन्त श्री दलीप साहेब का यश आपने सुना और इसका परिणाम यह हुआ कि आप उनके सत्सगो मे जाने लगी। आपने श्री धर्मवीर कौशिक द्वारा लिखित सभी पुस्तका का श्रेष्ठतम सम्पादन किया और सन् १६६० ई० मे स्वय के सम्पादन मे 'सत्गुरु के अज्ञात प्रेमी के पत्र' नामक कृति का प्रकाशन भी किया। आपके सम्पादन के बल पर ही 'सन्त समागम' नामक त्रैमासिक पत्रिका का प्रकाशन अगस्त १६५६ ई० से सन् १६७४ ई० तक सफलतापूर्वक चलता रहा। इस पत्रिका का सत्सगियो मे बडा स्वागत किया गया। परन्तु कतिपय विषम परिस्थितियो के कारण इसका प्रकाशन स्थायी रूप से नहीं चल पाया।

उपरोक्त सन्त कवियो और साहित्यकारो के अतिरिक्त अनेक धीसापन्थी सन्त एव भक्त आज भी विभिन्न विधाओ मे लेखन करके इस पन्थ की गरिमा

परिशिष्ट

सन्त-वाणियां

सन्त घीसा साहब की वाणियां

घीसा मोहे सतगुरु ऐसे मिले, जैसे दरिया नीर ।
मन की तपन बुझायके, निर्मल किया शरीर ॥१॥

घीसा ये माया के फन्द हैं, या मे हो रहा अन्ध।
मेरा गन्दा पिंड था, सतगुरु करी सुगन्ध ॥२॥

घीसा सतगुरु के दरबार मे, जाइए बारम्बार ।
भूली वस्तु लखाय दें, ऐसे हैं दातार ॥३॥

घीसा सतगुरु के दरबार मे, माया रहत हजूर।
जैसे गारा राज कूं, भर-भर देत मजूर ॥४॥

घीसा मनसा बह गई, कछू न आया हाथ ।
भटक फिरी खाली रही, नली नाल के साथ ॥५॥

घीसा मटका मद्य का, फूट गया बिच रंग ।
जात पाँत क्या पूछिए, देखे एको ढंग ॥६॥

घीसा आतम राम जाना नहीं, कहैं ब्रह्म की बात।
उनका संग न कीजिए, जिनकी झूठी बात ॥७॥

घीसा ज्ञान चाँदना हो रहा, दरशा चमन विवेक।
बाहर भटके बावरे, या तन ही में देख ॥८॥

हरदम याद करो साहेब ने, झूठा मर्म जजाला है।
हस्ती-घोड़े, रथ-पालकी, यूं धन माल असारा है।
राम नाम धन मोटा साधो, जिसका सकल पसारा है।
माया मोह दो पाट जबर हैं, चून पिसा जग सारा है।

सतगुरु शब्द फौलाद साँचा, लगा रहा मोई सारा है।
जड़ चेतन मे आप विराजें, रूप-रेख से न्यारा है।
ऐसी भूल पड़ी म्हारे सतगुरु, पावे कोई पावन हारा है।
घर तेरे मे लाल अमोलक, बिच मे परदा भारा है।
सतगुरु शब्द महल बना साँचा, हो रहा अखंड उजाला है।
सतगुरु शरण बहुत सुख पाये, निश्चय नाम अधारा है।
'घीसा' सन्त पन्थ मे धाये, छूटा भर्म जजाला है।

योगेश्वर धीरज रहना मेरा भाई, कर ले नाम की कमाई।
दया का दूध, प्रेम का जामण ज्ञान की रई फिराई।
मथ माखन जब खाया नाम का, और स्वाद कुछ नाहीं।
धीरज आसन लगा समझ का, पाप पुण्य कुछ नाहीं।
अन्दर वर्षा होत अमी की, रोम-रोम रग लाई।
सम्मुख होवे जो नर खेलें, शूरे सन्त सिपाही।
फनी-फनी निर्भय हो खेले आवागमन मिटाई।
बुरी-भली जिनके नहि व्यापे, एक नजर मे आई।
साक्षात में ब्रह्म रूप है, भर्म रहा कुछ नाहीं।
सुरत दिया का एक घर मेला, गुरु चेला भी नाहीं।
'घीसा' सन्त मगन हो बैठे, घट मे रहे समाई।

साधो भजो राम अविनाशी।
या जग की है रगत काची, सब घट माया नाची।
अपना रूप दिखाय बावरे, गल बिच डारी फाँसी।
सतगुरु रूप सहज चल आये, शब्दों किया विलासी।
जन अपने कूं देह धर आये, काटन जम की फाँसी।
मन मथरा मे आप विराजें, ये तन तेरा कासी।
लोग कहें ये हुए बावरे देखत आवै मोहि हाँसी।
शीतल रूप गुरु का देखा जग मे रहत उदासी।
'घीसा' सन्त पै कृपा हो रही टूटी भ्रम सडासी।

गुरु ने मोहे झीनी वस्तु लखाई।
नाजुक राह बोझ सिर भारा हलके पार लँघाई।
पार उतरके फिर ना आये आवागमन मिटाई॥

झीनी वस्तु भेद ना पाया निर्मल होकर पाई।
सुरत सिंधु पै आसन माडा हर हर होती आई॥

ब्रह्म अग्न पे तपसी तापें आठूं पहर लडाई।
ज्ञान शब्द का खजर पकडा दुरमत मार हटाई॥

'घीसा' सन्त चेत ले मन मे यहाँ रहने का नाहीं।
चला चली का खेल बावरे तू क्यूं लेत बुराई॥

देखो मेरे बाबा सन्त करें बादशाही।
दया शहर और शब्द मुल्क है समझ की गलियाँ भाई।
निश्चय नाम तख्त पें बैठे, रजा दाम ले याँही।
सत की तोप ज्ञान का गोला, प्रीत की चकमक लाई।
प्रेम सिपाही लडने लागे, भरम की बुरजी ढाई।
पाँच पचीसो पकड मँगाये, भेजा शील सिपाही।
क्षमा फद मे डाल दिये हैं, मुर्दे जिन्दे याँही।
काया नगर का राज करत हैं मुल्क बहुत सा याँही।
तीन लोक के नाथ बिराजैं, सोधी विरले ने पाई।
निर्भय राज दिया सतगुरु ने हरि हरि होती आई।
'घीसा' सन्त पै कृपा हो रही, अटल बादशाही पाई।

साधो! अवगत अलेख गाया, काया नगर मे पाया।
शील कमान समझ का तरकस, सत्य का तीर चढाया।
निर्भय नाम का लगा मोरचा, मन का भ्रम उडाया।
पाँच पचीसों नगर बसाया मन राजा समझाया।
तेरे शहर मे पाँच चोरटे, सतगुरु भेद लखाया।
ऊँची नीची सेरी घाके, रूप-रेख नहिं काया।
इंगला, पिंगला देख तमाशा, सुसमन आन समाया।
निर्भय होय अभय पद चीन्हा, नाथ निरजन गाया।
'घीसा' सन्त पै कृपा हो रही, सहजै सहज समाया।

मन तू ऐसा ब्याह करा रे, तेरी सहज भक्ति हो जा रे।
सातों बान समझ के न्हाले निर्भय ढोल बजा रे।
दया की महँदी, प्रेम का कंगन, शील का सेहरा बँधा रे।
पाँच, पचीसों चढ़े बराती, सत का मोहर बँधा रे।

सुरत सुहागन मिली पिया से पर घर काहे कूं जारे।
'घीसा' सन्त कहें सुन साधो आवागमन मिटा रे।

अब चली पिया के देश, मगन भई मद माती।
पिया तुम बिन बहुत ख्वार, भर्म मे बह जाती।
मेरे नैनों से ढल आया नीर, उमग आई मेरी छाती।
भागी बहुतक रूप बनाय, अकल मोरी सब थाकी।
अब तुही-तुही घट माँहि, नहीं कोई सग साथी।
जब लई पिया की राह छूट गए सब नाती।
पिया तुम लग मेरी अरदास अर्ज सुनो मेरी पाती।
मागो पिया की निर्गुण सेज, रैन दिन सुख पाती।
कहते 'घीसा' सन्त, रूप मे मिल जाती।

होरी खेल पिया सँग प्यारी।
तू तो सब रग ले रही न्यारी।
पाँच पचीसों होली खेलत हैं नगर धूम भई भारी।
प्रेम रग का पडत फुवारा रोम रोम रँग डारी।
इडा, पिंगला देख तमाशा अर्ध उर्घ भई न्यारी।
सुन्न महल मे बाजे बाजें अवगत की गति न्यारी।
त्रिकुटी महल मे ध्यान धरत हैं दरशा पुरुष अपारी।
सुरत सिन्धु पर होरी हो रही खिल रहा फूल हजारी।
सभी सुहागन मिल होरी खेलें जीवन की मतवारी।
'घीसा' सन्त खेल रहे होरी कुज गली निज न्यारी।

होरी खेलेंगे सन्त खिलारी, समझ धर चचल नारी।
अब कुनबे में सोच पड़ी है, फौज घिरी है सारी।
मर्नाहि फिरंगी लूटन लागा सोर हुआ है जारी।
मै मरी का लगा मोर्चा दारू भर्म उडा री।
पाप-पुण्य दो गोले चाले शोर हुआ है भारी।
ज्ञान सिंह ने चेतन कीना मदत दीनी है सारी।
अब तो धीरज आई है मन कू तोप धरी है भारी।
कायानगर मे अदल बैठ गया दुरमत हो गई न्यारी।
'घीसा' सन्त खेल रहे होरी दिल्ली लुट गई सारी।

करता कर्म रेख से न्यारा।
ना वो आवै गर्भ मास में नहीं धरे औतारा।
ब्रह्मा, वेद भेद नहीं पावै, पढ-पढ़ मरें लवारा।
ना वो मरै, नहीं वो मारै सब घट पालनहारा।
धीसा सन्त कहे सुन साधो निर्गुण धनी हमारा।

ऊंचे ऊपर ऊँचा ठाम। उस ऊँचा पर ऊँचा गाम॥
उस ऊँचे पर ऊँचा नाम। उससे ऊँचा और न धाम॥
उस ऊँचे ने जाने सोय। उस ऊँचे पर पहुँचा होय॥
'घीसा' सन्त महल है ऊँचा। पहुँचे सन्त हरीजन सूचा॥

ॐ सन्तो कंठ कँवल में खोजो भाई, यहाँ ही कहिए तेरा साँई।
कंठ कँवल जब खोज्या प्यारा, सूझन लागा सृजनहारा।
ज्ञान शब्द की कुंजी पाई, जब जोगी ने जुगत कमाई।
भर्म गढ़ का तोड़ा ताला, घट पिंड में हुआ उजाला।
रूम-रूम में खुशी बहारा, अमी बूंद का छुटा फुवारा।
त्रिवेणी में रंग लगाया, जामें फूल हजारा पाया।
जा करण तू भटके भाई, सो कहिए तेरे तन माँही।
ऐसी मूल बहुत सी डारी, आशा, तृष्णा हो रही भारी।
इनकूं मार अदल बैठाया, सुरत, निरत का मेल मिलाया।
गगन मंडल का रस्ता पाया, गुप्त भेद सतगुरु समझाया।
सुन्न महल में दिये दिखाई, यो हंसा है तेरा भाई।
तेरी आवागवन सहज मिटाई, निर्भय पद में रहा समाई।
पद पाया पूरा भया मिली नूर में नूर, सतगुरु की कृपा भई घीसा सन्त हजूर।
कहन सुनन की गम नहीं, घर-घर रहा भरपूर।

सन्त जीतादास की वाणियाँ

जीता अन्धकूप संसार है कोठा है सतनाम
रस्सी से गुरु ज्ञान की काढ़ें सन्त सुजान
जीता था सो लो गया रह गया घीसा सन्त
मिरल परल के देस ले निश्चल निर्गुण सन्त

जीता को साहिब मिले ज्ञान किया प्रकाश।
सन्त शब्द सा खेलत सन्तो ही के पास।
जीता जग में आय के टहल करो न सतसग।
धोखे मे दोजख गया पी माया की भग।
जीता सुमरण कीजिए आठ पहर चितलाय।
बिन सुमरण कुछ है नहीं जन्म अमोलक जाय।
जीता सुमरण कीजिए यही बडा है ज्ञान।
बिन सुमरण मनसा तेरी डोलत बेईमान।
जीता पतिव्रता पी मे मिली करके शील सिंगार।
देखत पी राजी हुई सभी उतारे भार।
जीता पूरे गुरु बिना भेद न पावे दास।
चौरासी मे जाय के भोगे बहुतक त्रास।

इस ममता ने पाड चाले,
घर घर लाये भ्रम के ताले।
इसके बेटे डिम्ब और मान, कदी ना करें साहेब का ध्यान।
झूठ कपट लम्पट परिवार, सब ही बो दिये अविद्य, विकार।
देखत सब ही मर मर जाय, तो भी ममता छूटत नाय।
घीसा सतगुरु करे निवालि, काल जाल म्हारे सब ही टालि।
जिनके सतगुरु हुए सहाय, जीतादास कूं लिया छुटाय।

तेरा चिडियों ने चुग लिया खेत,
रखवाला पड क्यों सोया ?
चिडी तृष्णा मोह गोलिया चुग चुग खावें ज्वार।
किस गफलत मे सोया रखवाले तू उठकर गोले मार॥

चौगिरदा के पछी उड उड बैठे क्यारी माँह।
चारो कौने घेर खेत के निर्मल सिरटे खाय॥

सतगुरु शब्द गोफिया लैके गोला ज्ञान टिकाय।
जिकर फिकर का छोडो फटकारा सब पछी उड जाय॥

यू तेरा खेत उजड जागा भौंदू हो जायगा कगाल।
घीसा सन्त कहें सुन जीता फिर के अडा लेगा ढाल॥

गुरु म्हारे समझ किया है खेल।
बिन बादल जहाँ बिजली चमके दिवला बले बिन तेल।
बिन सतगुर कोई लख नहीं सक्ता सुरत निरत का मेल।
प्रेमप्रीत का तार लगाय, सुमति नाम करी रेल।
इसी रेल मे हंस बिठा के दिया अगम कूं पेल।
घीसा सत करी गुरु कृपा 'जीता' कूं प्रेम पिलाया सत मेल।

अपने पीतम के घर जाऊँगी,
बहुड उल्ट नहीं आऊँगी।
चन्द सूरज की वहाँ गम नाहीं, मैं तो ज्ञान का चिराग जलाऊँगी।
हिन्दू, तुरक नहीं वहाँ कोई मैं तो घट ही मे वेद बचाऊँगी।
पीतम मेरे दिल की बूझें, मैं तो अपने-अपने ही वैन सुनाऊँगी।
नहीं वहाँ देव नहीं कोई साधक मैं तो एकली ही बतलाऊँगी।
चरण कँवल की सेवा करके, सेजडियाँ सुख पाऊँगी।
जीता नारी कहे विचारी, मैं तो तन मन से मिल जाऊँगी।
घीसा सन्त पूर्ण पिया मिलिया, मे तो जब ही सुहागन कहाऊँगी।

सन्त नेकीराम की वाणियाँ

राम नाम निज सार है सब सारन मे सार।
कोटि कला प्रकाश पूर्ण ऐसा अकल इमान है।
अष्ट कमल दल मेल साहेब हरदम खेल अनूप है।
रहता रमता आप साहेब ना छाया ना धूप है।
नाभि कमल स्थान जाका तुरिय तत्व निज धाम है।
चला हंस उस धाम पर सो बोहड ना ऐसा दाम है।
गगन-मंडल गलतान गैबी सोहं रूप अपार है।
'नेकीराम' उस धाम पर से अवगत का दीदार है।

कर चलने का प्रबन्ध,
तेरी यहाँ नहीं समाई रे।
काम क्रोध, मद, लोभ लुटेरे, जन्म जन्म के वैरी तेरे।
एक दिन हो जंगल डेरे, खडी-खडी रोवे तेरी ब्याही रे।

कोई दिन का दर्शन मेला, फिर उड जागा हस अकेला।
तेरे सग चले ना धेला, जब आ जा हुक्म तनाही रे।
तैंने जइमा करा ना राम का, वाको रह जा तेरे नाम का।
अरे भजन करा ना श्याम का, जावे तेरी मिसल दिखाई रे।
पाँच-पचीसो नगर बसाया, जिन्हें दख देख गरमाया।
तेरे हाथ कछू ना आया, तू करके चला सफाई रे।
कहें 'नेकीराम' सुनो भाई साधो, राम नाम की पूंजी बांधो।
कर चालो उत्तम काम, धर्म की करो कमाई रे।

अरे समझ ले बन्दे कोई नहीं तेरा।
मात-पिता ने पैदा करके, तेरे लाड लडाये अकना।
पालन पोषण शादी करके वह मृत्यु मे आए अकना।
भाई बन्धु और कुटम्ब-कबीला, वह तुझको अपनाये अकना।
विषयों कारण फिरा भटकता, दर-दर धक्के खाये अकना।
रात दिना फिर खूब कमाया, जोडा है माल बहुतेरा।

इतने धन को जोड जोडकर उस धन का तैंने क्या किया।
धन के मद मे आके बन्दे, दुनिया मे अन्याय किया।
झगडेबाजी करे मुकदमे, गरीबों को तरसाय दिया।
पुण्य मे पैसा लाया कोई नहीं, तू किसने बहकाय दिया।
बेटे-पोते होन लाग गये, बढ गया कुटम्ब घनेरा।

चढी जवानी खूब कमाया दिन मे धन्धा बहुत करा।
सबका पालन पोषण कीना, उनका उदर तैंने ही भरा।
जो कुछ बाकी उनसे बच गया, जोड-जोड के माल धरा।
गई जवानी आया बुढापा, खाट बीच मे जाय पडा।
कफ वायु खांसी ने बन्दे—घट तेरे को घेरा।

थर-थर काया कांपन लागी, हाल्या जाता जरा नहीं।
जिसे बुलावै कडवा बोलै, राड कटी तू मरा नहीं।
सबका पालन-पोषण कीना, अपना उदर भरा नहीं।
अब कुनबे को सिर पर धर ले, भजन हरी का करा नहीं।
अब ईश्वर को याद करे है कौन हाल हुआ तेरा।

सिर पर चक्कर चढा काल का, आन सधी अब वही घडी।
यम के दूत तेरे घट को रोकें, दम तेरे पै भीड पडी।

अपने मन मे कुनवा सोचे, शायद घडी मे कटी लडी।
'नेकीराम' समझ का मेला, दुनिया देखे खडी-खडी।
पाप पुण्य तेरे साथ चलेगा, हो जागा कूँच सवेरा।

तेरा हरि से मिलन कैसे होय।
सतसग मे सुरतां आवती नहीं।
बेटा - बेटी पोता - पोती, रही कुटम्ब मे मोह।
अन्त समय तेरा कोई न साथी, अकेली ने चलना होय॥
पीपल सींचें, जाडी धोके, तुलसा के सिर होय।
दूध, पूत मे कुशल राखिये, मैं धोकूंगी तोय॥
बालापन, तरुणाई, बुढापा तीनो पन दिये खोय।
अब पछताये क्या होत है मूंड पकड-पकड के रोय॥
पाँचो के सग लागी डोले विषय दस रही भोग।
कभी बाहर कभी भीतर जावे, चैन पडे ना तोय॥
बार बार समझाई मेरी सुरतां एक ना मानी तोय।
'नेकीराम' कहैं समझ लाडली, मूल ब्याज चालो खोय॥

सन्त घोतरामदास की वाणियाँ

घोतराम छोटी बालिका ज्यों गुडिया का खेल।
आनन्द से खेलन लगी नहीं था पति से मेल॥

पिया मिलन के कारणे गुडिया खेलन चाव।
खेलत - खेलत जा मिली सत्य पिया के पाव॥

शील रस्सी कर में लई ढीली देह सुधार।
अमलोक रत्न नीर था रक्खा खूब विचार॥

झिलमिल झिलमिल हो रही ताका वार न पार।
काया की शोभा बहुत जाने ब्रह्म दीदार॥

चार बडे हैं खेत मे जो हो सूखे जान।
काम, क्रोध, लोभ, मोह हैं इनको कर दो हान॥

मान, बड़ाई, ईर्ष्या यह है मूल बबूल।
उनको जड़ से काटिये छोड़ो कभी न भूल॥

राम नाम का बीज या बोया खेत मे जाय।
ज्‍यूँ ज्‍यूँ हरियाली खिली हरिजन को पहुँचाय॥

चौकसी इनकी करौ पाँच चोर बड़े ऊत।
हटाए से हटते नहीं लड़ने मे मजबूत॥

सखी री तुम चलो दिवाने देश, लाल वर पूरा वरियो री।
सखी री तुम तजो कुटम्ब परिवार, समझ के मोह मत करियो री।
सखी री तजो सब सखिन का साथ, समझ उल्टी मत करियो री।
सखी री चढ़ना गगन मंडल के बीच, सखी री निर्भय घर करियो र।
सखी री वहाँ ब्रह्म हुए भरतार जीव से दूर बिसरियो री।
सखी तेरा जन्म मरण मिट जाय, बाहुड़ के देह मन धरियो री।
सखी री तुमको कहते हैं द्योतराम सत पिया के संग समरियो री।

ऐसा भी मिल जा कोई चतुर मल्लाह
जो मेरी नाव को पार लगा दे री

बहुत दिनो की मैं तो भूली रे खड़ी हूँ नौका ने वेग चला दे री।
मेरे पिया से मेरा हुआ बिछोह ऐसा, कोई तुरत मिला दे री।
काम, क्रोध, मोह, मद, माया कोई लहरी इनसे तुरन्त बचा दे री।
भँवर चक्कर मे मेरी नैया फिरत हैं झटपट बल्ली लगा दे री।
राग, द्वेष जो मच्छ जबर हैं, इनकी चोट बचा दे री।
तीनों धार पड़ें सागर मे उनसे पार टपा दे री।
तीनों धार परे पिया मेरा, ऐसा कोई दर्श करा दे री।
चार वेद और सन्त बतावें, मेरे दिल का भर्म मिटा दे री।
सन्त द्योतराम को सुन सजनी पूछें तो राह बता दे री।
सत चित आनन्द रूप पिया का मिले तो तुरन्त मिला दे री।

सुन सुरता प्यारी पिया देश मे जाओ री।
ज्ञान की सीढ़ी टग-टग चढ़ जा गगन मंडल घर छाओ री।
पाप-पुण्य करनी से वहाँ जाये अपना आसन लाओ री।
लोक लाज और कुल मर्यादा क्षण में तोड़ मिटाओ री।
क्रिया कर्म भर्म ना कोई सबको ठौर जलाओ री।

राम—खुदा का नाम न लेना बेनामी हो जाओ री।
ज्ञान न ध्यान कथा नहीं करनी बिन ध्वनि ध्यान लगाओ री।
गीता गायत्री वेद न पहुँचे वाणी विधि के गाओ री।
सत चित आनन्द रूप पिया का उसके बीच समाओ री।
लखता मिली अलख मे जाके अपना नाम मिटाओ री।
सन्त ग्रोतराम कहे सुन सजनो वावहड नहीं जाओ री।

सन्त ईश्वरदास की वाणियाँ

चला जा कदर नहीं जानी।
कागज पाथर पूजें दुनिया न्हावै तीरथ पानी।
साध, असाध की सार न जानै भटकत फिरै दिवानी।
जर, जोरू की करै गुलामी बन बैठे ब्रह्म ज्ञानी।
'ईश्वरदास' कोई नहीं अपना दुनिया सभी बिगानी।

झूठा है ससारा सारा झूठा है ससारा।
मीठी मीठी बात बनावे अन्तर से है कारा।
झुक-झुक के यह शीश नवावै बडा मसकरा मारा।
मुँह का मीठा, मन का खोटा दगेबाज हत्यारा।
कहे मैं सतगुरु तेरा बन्दा तू ही तारन हारा।
वक्त पडे पे कुछ ना जानै हमने खूब निहारा।
'ईश्वरदास' परतीत नहीं इसकी मन में यही विचारा।

घट माँहि निरजन हैं सजन तुम ख्याल करो।
तेरे खुद में खुद हैं वे उलट कर ध्यान धरो।
मानस जनम अमोलक है गुरु-चरण लाग तरो।
भवसागर भारी है नाम की नाव चढो।
ऐसा वक्त न पाओगे अगम की राह फडो।
चढो सुन्न अटारी पे क्यों नाहक जन्म मरो।

सुख सागर न्हाओ रे क्यों क्रोध की अग्नि जरो।
'ईश्वरदास' कहता है जमा की क्यों ऐन भरो।

वो देश दियाना जी पहुँचे कोई सन्त जना।
वहाँ अनहद बाजे जी चल रही सुखमना।
बरखे अमिरत बरखा जी पाया आनन्द घना।
होवे शब्द अखण्डित जी बज रह्या रैन बिना।
झिलमिल ज्योति चमकती जी दरसा तारागणा।
'ईश्वरदास' सुख माने जी गुरु के मैं धन्यधना।

तुम जानत नाहीं रे कहाँ फिर जाओगे।
नाभि कमल से उठके तुम गगन घर पाओगे।
वहाँ अनहद बाजे जी अमर फल खाओगे।
चाले सुखमन नदिया जी जहाँ मल मल न्हाओगे।
बाजे शब्द सोहगम जी सुन सुन विगसाओगे।
झिलमिल ज्योति चमकती जी सुन्न महल बसाओगे।
'ईश्वरदास' घर जाकर के तुम बहुड नहीं आओगे।

मेरा डेरा कोई नहीं मेरा डेरा एक।
उस डेरे में रम रहे हरदम उसकी टेक।
करना सो तो कर लिया अब करने का नाहिं।
'ईश्वरदास' आनन्द पद पाया इस घर ही माँहि।

थोडा मिलना सुख घना मन मे रहे हुलास।
बहुत मेल मिलाप से होय प्रीत का नास।
होय प्रीत का नास बैर फिर होवे पैदा।
मुख देखन से जाइ पडे आपस मे वैदा।
कहें 'ईश्वरदास' किसी से करे न जोडा।
असत फकीर की रीति मिले इस जग से थोडा।

आई जम की फौजांवे भजन भजन गढ त्यार करो।
जम पकड ले जावंगा बहुत ही दुख भरो।
संग कोई ना चालेगा अकेले ही राह फरो।
साथ कोडी ना जावंगी जोड-जोड क्यो धरो।
कोई रोज का मेला है क्यों क्रोध की अगिन जरो।
पकडो क्षिमा गरीबी तुम साहिब से सदा डरो।
'ईश्वरदास' घर खोजो तुम फेरि जनमो न मरो।

ऐसा देश हमारा है जहाँ कोई मरता नहीं।
वहाँ रंग तमाशे हैं शोक कोई करता नहीं।
वहाँ जोर ना जुल्मी है दण्ड कोई भरता नहीं।
वहाँ चोर ना डाकू हैं माल कोई हरता नहीं।
वहाँ राज ना राणा है, किसी से कोई डरता नहीं।
वह देश दिवाना है वेद कोई पढ़ता नहीं।
वहाँ अमृत वर्षा है अगन कुंड जलता नहीं।
वहाँ अनहद वाणी है भोग कभी पडता नहीं।
'ईश्वरदास' यहाँ पहुँचेगा जो, जन्म फेर धरता नहीं।

सन्त अवगतदास की वाणियाँ

गुरु दरबार मे जाना चलो चलिए जी !
आसन सयम साध पियारे सोहं स्वास मे आना।
सुरत निरत से चीन्ह बावरे, दसो नाद मिल जाना।
काल जाल के बंधन छूटें, पावै रे पद निरवाना।
घीसा सन्त दरबार विराजें ! दास प्रेम कर जाना।
'अवगतदास' शरण मे ठाडे, सतगुरु चरण लपटना।

मैंने बहुतों के बोल सहे सितमगर तेरे लिए।
चाचरी, भूचरी, अगोचरी मुदरा, मैंने त्रिकुटी ध्यान धरे।

नर नारी मे भेद नहीं है रहें सदा निर्द्वंद।
महिमा अपार पार नहीं पाया पूरन ब्रह्मानंद,
गुरु को जो मानुष कर जाने सो बुद्धि के अंध।
गुरुब्रह्मा, गुरु विष्णु, महेश्वर निराकार निर्बन्ध,
'योगानद' गुरु की सेवा जीवन-मुक्त उमंग।

गुरु सन्त छोतराम जो नाम रूप आधार।
'द' कहे पाप दग्ध हो सारे, सबको हो जाय छार।
'त' से तत्व रूप वही है, वार पार हक सार।
'र' से सब मे रमा हुआ है, रोम रोम की लार।
'म' से महा प्रकाशक ज्योति एक नाम ओंकार।
सत् चित आनन्द नर उन्हीं का नहीं हल्का नहीं भार।
भक्त होत तन धारण करके किया बहुत उपकार।
'योगानद' शरण सतगुरु की हरदम करो विचार।

दूजा नहीं विगोना, आप समझ ले तू भाई।
औगुणकार वृती जो होती गुण सूझते हैं नाहीं,
तेरे दोष दूजे मे मापे यह तेरी मूरखताई।
जो कोई बात बताओ जैसी समझ मे आई,
वाद विवाद झगडे को त्यागो हो जागी रोशनाई।
तेरे दुश्मन तुझमे रहते काम, क्रोध बलदाई,
जो तू इनको जीता चाहे तज दे मान बडाई।
प्रारब्ध का भोग समझ ले बुरा भला कहे जाई,
इसमे हर्ष शोक मत माने सतगुरु रहे समझाई।
तन मन वाणी एक बना ले सतगुरु करे सहाई,
तर्क, फर्क, वृत्ति मे राखे देगा गिर्द मिलाई।
बुरी भली बाहर भीतर की सब जानी रघुराई,
लाख जतन कर वह नहीं छिपती देती प्रकट दिखाई।
सन्त छोतराम गुरु मिले पूरे ऐसी गली लखाई,
'योगानद' समझ के चालो नहीं लेंगे यम ठकुराई।

महन्त अचलदास की वाणियाँ

१

जय हो तुम्हारी घीसाराम।
हाथ जोड में खड़ा हुआ हूँ, शरण आपकी पड़ा हुआ हूँ।
सभी तरह से झड़ा हुआ हूँ, नहीं बनता है कुछ काम॥
मैं मतिमन्द मूढ अज्ञानी, गति आपकी जाये ना जानी।
सुन लो मेरी राम कहानी, तुम्हारे बिन सरता ना काम॥
माया मोह मनहिं भरमावे, कामदेव बस में ना आवे।
बिना तुम्हारे कौन बचावे, बिसरी मत अवचल राम॥
दुनिया दौलत तुम हो सारी, तुम हो मेरे मूल पसारी।
दया करो प्रभु दीन हितकारी, सुध लो मेरी आठों याम॥
प्रेमरूप में तुम ही आये, स्वामी अवगतदास कहाये।
'अचलदास' को शरण निभाओ, दो प्रभु अपना नाम॥

२

मनवा काहे कूँ डामाडोल।
लगे के लाखों मोल बतावें, डिगे पर यों ही धक्के खावें।
सुनते लाखों बोल, मनवा काहे कूँ डामाडोल॥
सबसे मीठा बोल जगत में, मत ना कांटे बोवें पथ में।
पूरा बन कमती मत तोल, मनवा काहे कूँ डामाडोल॥
उलटा नाम जपा जग जाना, बालमीक भये ब्रह्म समाना।
जमे के लाखों मोल, मनवा काहे कूँ डामाडोल॥
वचन भरे ये गर्भवास में, अब फिरता क्यों विषय आस में।
झूठे तेरे कौल, मनवा काहे कूँ डामाडोल॥
ध्यान लगा सतगुरु के चरण मे, ना आयेगा जनम-मरण में।
'अचल' सतनाम मुख बोल, मनवा काहे कूँ डामाडोल॥

३

मन पापी बदले तरह-तरह के रंग।
स्वार्थ बात सदा ही चाहे, परमार्थ से हाथ उठावे।
करत भजन मे भंग, मन पापी बदले तरह-तरह के रंग॥
माटी का सब साज बनाया, क्यों इतना इस पर गर्भाया।
तेरे कुछ ना चाले संग, मन पापी बदले तरह-तरह के रंग॥

झूठी काया, झूठी माया, मन मूरख तू क्यो भर्माया
कर लेरे सत्संग, मन पापी बदले तरह-तरह के रंग ।।
चाहे अच्छे सुत और दारा, भाई बन्धु और परिवारा।
अजब नवेले ढग, मन पापी बदले तरह-तरह के रग ।।
'अचलदास' ने बहुत सुझाया, मन मूरख को एक न भाया।
रहे दुनी मे दग, मन पापी बदले तरह-तरह के रग ।।

४

दया करो दीनानाथ
मैं शरणागत थारा हो !
पापी पतित भी होते आये, सब के काज सुधरते आये।
जो-जो थारे द्वारे आये, किया उनका निस्तारा हो ।।
मैं भी तो पापी पतित खड़ा, क्यों ना आपकी नजर पड़ा।
ऐसा क्या बोदा कर्म अड़ा, दया करो करतारा हो ।।
बन्दी छोड अभय अविनाशी, काटो जन्म मरण की फाँसी।
साहब कबीर आये थे काशी, दुखी देख ससारा हो ।।
संशय, शोक को टारन हारे, दीनों के तुम रखवारा हो।
मैं मूरख हूँ थारे सहारे, झूठा कुटम्ब परिवारा हो ।।
घीसा साहेब पार लगाओ, उलझी हुई को आ सुलझाओ।
'अचलदास' की आन बचाओ, नाव पड़ी मझधारा हो ।।

सन्त मंगतदास की वाणियाँ

दई देव सतगुरु मिले साहेब हर करतार।
अकथ कहानी प्रेम की, मगत सन्त पुकार ।।

शीत उष्ण व्यापे नहीं पिण्ड, ब्रह्मण्ड के पार।
सकल सृष्टि में रम रहा, चर अचर नर नार ।।

निराकार, साकार मे आप रहो रघुवीर।
सहजे धुन लागी रहे, कहते अमर फकीर ।।

ओंकार से सब रचा सोहंग कीना लीन।
जन्म-मरण फेरा मिटा राम दया हो दीन॥

मन्दिर अन्दर झिलकता, हसा सीधा चाल।
शब्द विहंगम मिल रहा, सतगुरु रामगुपाल॥

जाति, वर्ण, कुल है नहीं, नाम रूप मिट जाय।
बाजीगर सा खेल है, समदर्शी कोई पाय॥

जो दीखे सो विनसिया, अविनाशी जगदीश।
मन इन्द्री बेकार हो, देखो विशवा बीस॥

सुमरो रे प्राणी साँचा साहेब पीर।
रैन दिवस का लग रहा फेरा जी, रस्ते पड़ो बहीर।
माता पिता, सुत कुटुम्ब कबीला जी, कोई ना बँधावे तेरी धीर।
पहले सुमरा नाम अनारी जी, ये मन कियो ना फकीर।
डामाडोल कीच में सनता जी, न्हाया नहीं कभी नीर।
'भगत' सन्त गरीब पुकारे जी, हाकिम नहीं से वजीर।

विरह मे रो रही री, मैं सख्त हुई बीमार।
खबर नहीं पटतो री, मैं को विधि करूँ पुकार।
धक-धक होती री, इस काया नगर मझार॥
कर्म सब जलते री, वहाँ फूके, विषय विकार।
झिलमिल होती री, सखी भेंट हुई दीदार॥
मिटे सब झगड़ा री, तुम देखो दृष्टि उभार।
बहुर नहीं आना री हो सुन्दर छवि निहार॥
थकित हो जाना री, या घाटी विकट हमार।
ये 'भगत' कहते री, है घर में ब्रह्म अपार॥

नाद में गा रही री, मेरे सिर पै सर्जनहार।
पाँच, पचीस् लूटे री, ये घर में करें विचार॥
सब धन लो दिया री, तू बहुत सहेगी मार।
माना तरंग उठे हैं जल में, अपनी-अपनी बार॥

करके सिफ्त चलो तुम मैना, साहेब सुने पुकार।
खिल रहा फूल बगीचे माही आती महक अपार॥
भागी मैंना हित कर सींचो, लागे चमक अपार।
ये 'मगत' सुरती गन्ती मैना, घर मे कहूँना वार॥
तृप्त हो गई री, मैं नैनों बीच निहार।

सखी री मेरे लगी विरह की चोट, ओट मैं हर की ले ली री।
हां ये दिन-दिन चाला जाय, सगा ना कोई सुहेली री।
मेरा मरम न जाने कोय, काया हुई दुहेली री।
सखी मोहे ये धन मिलता आय, मरहमी आकर हेली री।
हो तुम सतगुरु दीनदयाल, नाव तुम मेरी तारो सुहेली री।
मैना लगे ठिकाना नाय, भटकती खडी अकेली री।
हां काया 'मगत' करे पुकार, शब्द ये गावे चेली री।

महन्त समन्दरदास की वाणियां

१

खोलो गांठ गुरु मेरे मन की,
मैं दासी तेरे चरणन की।
नित जोहूँ बाट गुरु तेरे मग की,
धुंधली हुई ज्योति मेरे मन की।

अधीर फिरै ये बन खड मे,
भ्रमित हुई दृष्टि इसकी।
मन का हिरन मेरा जाए कहाँ,
बीन सुनी तेरे शब्दन की।

दासी को ले लो अपनी शरण मे,
तृप्ति बुझाओ मेरे दृगन की।
मत तरसाओ सतगुरु मेरे,
सुधि लो अब इस बिरहन की।

२

बीच भँवर में नैया मेरी, आ जा पार लगा दे,
सतगुरु पार लगा दे!

भरम कोठरी में रहता हूँ, ज्ञान-प्रकाश दिखा दे,
आ जा पार लगा दे!

मैं अज्ञानी मूढ़ मति हूँ, ज्ञान की बात सुना दे,
आ जा पार लगा दे!

काम, क्रोध, मद, लोभ ने घेरा, भ्रम का भूत भगा दे,
आ जा पार लगा दे!

किस विधि सतगुरु तुमको पाऊँ, इतनी बात बता दे,
आ जा पार लगा दे!

कितनी देर से खड़ा हूँ दर पै, दास की धीर बँधा दे,
आ जा पार लगा दे!

३

कर्म की शिला पर मधुर चित्र कितने,
किसी ने बनाये किसी ने मिटाये।

विलासों की धारा में बह करके हरदम,
कोमल दिलों के आलम,
किसी ने उजाड़े किसी ने बसाये।

क्षणिक प्रभुता की खातिर दुर्बल हड्डियों पर,
सुन्दर मन्दिर कितने,
किसी के चिनाये किसी ने ढहाये।

अपनी तमन्नाओं की खातिर खूने जिगर में,
पापी पात कितने,
किसी ने तिराये किसी ने डुबाये।

'दास' बस तू भी गुरु दर्शन की खातिर,

सतगुरु की कोमल वाणी,
किसी को हँसाये किसी को रुलाये।

४

मेरे जीवन-पथ के माँझी,
मुझे अकेला छोड दिया।

मन-सरिता की लहरो मे,
मेरी डगमग नैया डोली।
दु खी अँखियन के मोतियो से
मैने पूजा की भर दी थाली।

मेरे द्रवित हृदय पर,
चली बिरह की कटारी।

'दास' तेरे प्रेम कुज से,
चला स्नेह का माली।

स्वामी आत्मप्रकाश की वाणियाँ

१

कैसा बनाया भगवान, खिलौना माटी का।
कोई न सका पहचान, खिलौना माटी का॥
हाड मांस की देह बनाई, ऊपर चमडी खूब लगाई।
क्या तू किया अभिमान, खिलौना माटी का॥
धन-दौलत तू खूब कमाया, अन्त समय तेरे काम न आया।
लिया न हरि का नाम, खिलौना माटी का॥
बालापन तू खेल मे खोया, जोबन में तुझे काम बिगोया।
कैसे होवे कल्याण, खिलौना माटी का॥
मानव-तन माटी मे मिलेगा, माल खजाना संग ना चलेगा।
क्यों भूल रहा इन्सान, खिलौना माटी का॥
सन्त दर्श कभी ना कीन्हा, सत्सगत मे समय न दीना।
कैसे होवे तुझे ज्ञान, खिलौना माटी का॥

अब की समय हाथ में आया, मानुष जन्म अमोलक पाया।
लेवो गुरु से ज्ञान, खिलौना माटी का॥
प्रेम का प्याला भर-भर प्यावे, 'आत्म प्रकाश' ज्ञान सिखलावे।
अपना स्वरूप पहचान, खिलौना माटी का॥

२

सन्तन को सत्संगा—करे भव को भंगा।
सन्त दरश से पातक टरते, मन हो जावे चंगा।
सन्त मिलें तो हरि मिल जावें, सन्त रगे हरि रंगा।
सन्त दया कर भक्ति मुक्ति दें, शुद्ध करें जिमि गंगा।
सन्त जिमाये से हरि जीमें, सन्त, हरि दोउ इक अंगा।
'आत्म प्रकाश' सन्त कृपा से, समझे रूप असंगा।

३

सत्संग रूपी गंगा नित्य नहाना चाहिए।
ममता रूपी मैल धो बहाना चाहिए।

यह काया रूपी काशी बड़े भाग से मिली।
इसमें जीवित मर के मुक्ति पाना चाहिए।

इस काया गढ बाजार में, कुछ दिन ही रहना है।
आये हो गर सौदा कुछ कमाना चाहिए।

इस काया रूपी पिंजरे में तू भूल से फँसा।
अब आये हो सो आये, फिर न आना चाहिए।

'आत्म प्रकाश' यदि तुमको है बन्धन तोड़ना,
तो श्रद्धा सहित सतगुरु शरण में आना चाहिए।

४

देवो जो प्रभु सदा मोहे सत्संग।
प्रेम भगति उपजे सत्संग से, लगे तुम्हारे रंग।
शील, सन्तोष, दया उपजे मन हृदय होते उमग॥
विवेक, वैराग उपजे सत्सग से, दुर्मति होवत भंग।
जीव भाव तज ब्रह्म होत है, जैसे पलटे भृङ्ग॥

जीवनमुक्त होत सतसग से, गुणों से होय असंग।
'आत्म प्रकाश' मिले मोक्ष पदार्थ, सतसग के प्रसग॥

५

यह जन्म निछावर हो जावे, भगवान का प्रेम निभाने में।

यह रसना निशि दिन मस्त रहे, श्री ईश्वर के गुण गाने मे।
यह कान सदा ही लगे रहे, हरि कथा परम रस पाने में॥

यह आंख सदा हरि-रूप पिवें, सब बालक, वृद्ध युवाने मे।
यह पांव चले सदमारग में, कोई अद्भुत लाभ उठाने में॥

यह हाथ सदा ही लगे रहें, सबको सुख पहुँचाने मे।
यह बुद्धि सदा ही लगी रहे सत् असत् विवेक कराने मे॥

यह मन भी 'आत्म' लग जावे, सब भेद, भ्रम को ढाने मे।
यह वृत्ति सदा ही लगी रहे, निजानन्द को पाने में॥

६

हरि बोल मेरी रसना घडी घडी
व्यर्थ बिताती है क्यो जीवन, मुख मन्दिर मे पडी-पडी।
लाज नहीं तोको आवे री, बात बनावे बडी-बड़ी।
औरों का हृदय तू बेधे कहकर बातें सडी-सडी।
निन्दा करनी तू ना छोडे, चाहे मारे तोहें छडी-छडी।
अमर सुधा रस बरसे अन्दर, हरदम लग रही झडी-झडी।
'आत्म' रस मे हो मतवाली, ज्ञान की पीले जडी-जडी।

७

साधो रे भाई घर-गृहस्थी दुखदाई।
पांच तत्त्व की ईंट बनाकर, तीन गुणा चुनवाई।
इन्द्री द्वार झरोखा नाना, थम्बा पवन बनाई।
मन भया पिता, मति भई माता, दुख सुख दोनो भाई।
आशा, तृष्णा बहनें दोनों, यह गृहस्थी दुख दाई।
अहं पुरुष, कुबुद्धि नारी, पच कुपूत उपजाई।
पांचो कीमत न्यारी-न्यारी, घट मे कलह मचाई।
पुण्य, पाप दोऊ पोते उपजे, अनन्त वासना नाती।
राग-द्वेष का लेना देना, गृह बना उत्पाती।

अन्दर की गृहस्थी छूटे बिन सुख नहीं पावे कोई।
'स्वामी आत्म' पार होवे जब सतगुरु कृपा होई।

८

सुरत प्रभु नाम में अटकी।
स्वांस बांस घर भीतर रोप्या, प्रेम डोर छटकी।
सुरत कलाली चढ़ी बांस पर, कला करे नट की।
मैं मेरी का बोझ जबर था, तृष्णा की मटकी।
शब्द झकोला दिया घट भीतर, सब-की-सब झटकी।
सतगुरु दे उपदेश उभारी, जनम जनम भटकी।
शब्द सुरत का मेल कराया ममता घर पटकी।
घर ही घर मे जूझन लागी मन से जा खटकी।
उन्मुन तारी लागी गगन में, खबर हुई घर की।
आनन्द ही यहाँ बरस रह्यो है प्रेम बूंद गटकी।
'स्वामी आत्म' अपना घर पायो सुरत जाय लटकी।

९

घट ही मे उजियारा, रे साधो!
चेतन ज्योति जगे निरन्तर, नहीं वार नहीं पारा।
बिन नैनों ही दर्शन कीजे, आनन्द रूप अति प्यारा।
अन्तर्मुख मस्त हो रहिए, चले न यम का चारा।
अन्दर-बाहर सर्व निवासी, अखण्ड रूप निरधारा।
'स्वामी बलजीत' भ्रम भय भागे होवे ब्रह्म दीदारा।

१०

ब्रह्म रूप अति झीना, रे मनवा।
स्वांस स्वांसा सुरत समोवो बजे सोहं की बीणा।
त्रिकुटी कमल का आसन लगाये, सो योगी परवीणा।
उन्मुन तारी लगे शिखर मे आतम रस तिन पीना।
चिन्मय ज्योति रूप-रंग बिन निज ही मे लख लीना।
'स्वामी बलजीत' मे पद पाया सफल तिनों का जीना।

११

देखो ज्ञान उजियारा, रे साधो।
बिन ही तेल चसे दिन राती अखंड रूप निराधारा।

नेत्रों से जो दीखत नाहीं निर्विषय निराकारा।
ठंडा नहीं गर्म भी नहीं जो, नहीं हल्का नहीं भारा।
अचल अमर अरु निर्विकार है, सबका जाननहारा।
'स्वामी बलजीत' सकल जग पूरण आपे ही चिदाकारा।

१२

ज्ञान का पंथ निराला, रे साधो !
शम, दम, शील, दया, समता की मन पहने है माला।
श्रवण मनन करे निदध्यासन उठे विचार की ज्वाला।
आतम प्रेम जगे मन माँही, पीवे आनन्द प्याला।
देहाभिमान की दे आहुति स्वय स्वरूप सँभाला।
'स्वामी बलजीत' भरम भय भागे ज्ञान का होवे उजाला।

१३

तेरे हृदय बस रहे राम, तू दर्शन कर ले रे !
स्वांस स्वांसा सुरत समोवो होकर के निष्काम।
झिलमिल ज्योति जगे निरन्तर नहीं शीत नहीं घाम।
बिन देही का देव निरालम्ब पावो सदा विश्राम।
बिन ही नैनो दर्शन कीजे निशिदिन आठों याम।
'स्वामी बलजीत' निज ही को जानो पावो अविचल धाम।

१४

सुनो रे सन्तो, ऐसा है देश हमारा !

ना यहां बिजली ना यहां तारा।
ना यहां चन्द सूरज उजियारा।
स्वय ज्योति विस्तारा।

ना यहां आना, ना यहां जाई।
ना यहां मात, पिता, सुत, भाई।
ना कोई गृह पसारा।

ना यहां शत्रु, ना यहां मीता।
ना यहां उष्णा ना, यहां शीता।
नहीं हल्का नहीं भारा।

ना यहाँ इन्द्री, ना यहाँ भोगा।
ना यहाँ शोक, नहीं यहाँ रोगा।
ना कोई मनोविकारा।

ना यहाँ नाम, नहीं यहाँ जाति।
ना यहाँ दिवस, नहीं यहाँ राति।
सदा आप निरधारा।

ना यहाँ राग, नहीं यहाँ द्रोहा।
ना यहाँ क्रोध नहीं, यहाँ मोहा।
सदा आनन्द अपारा।

ना यहाँ रोना, ना यहाँ गाना।
ना यहाँ देही, ना यहाँ प्राणा।
सदा आप चिदाकारा।

ना यहाँ तत्त्व, नहीं गुण तीना।
ना यहाँ मरण, नहीं यहाँ जीना।
अजर अमर निस्तारा।

ना यहाँ पुण्य, नहीं यहाँ पापा।
ना वरदान नहीं, यहाँ श्रापा।
एक रस सदा उजियारा।

ना यहाँ बन्धन, ना यहाँ मुक्ति।
ना यहाँ तर्क, नहीं यहाँ युक्ति।
स्वयं आप करतारा।

ना यहाँ जड़ता, ना यहाँ स्वप्ना।
ना यहाँ बुद्धि, नहीं कल्पना।
स्वयं प्रकाश अति प्यारा।

'स्वामी बलजीत' सही लवलीना।
आतम-रूप अति है भीना।
अखण्ड रूप निराकारा।

• • •

सहायक ग्रन्थ

अध्यात्म विद्या क्या है ?—सन्त कृपालसिंह
उत्तरी भारत की सन्त परम्परा—प० परशुराम चतुर्वेदी
उदासीन सम्प्रदाय के हिन्दी कवि और उनका साहित्य—डॉ० जगन्नाथ शर्मा
कबीर—आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी
कबीर ग्रन्थावली—डॉ० श्यामसुन्दरदास
कबीर साहित्य की परख—प० परशुराम चतुर्वेदी
'कादम्बिनी' (मासिक हिन्दी, अप्रैल १९८०)—सम्पादक—राजेन्द्र अवस्थी
'खत्री स्मारक ग्रन्थ'—सं० शिवपूजन सहाय
गुरुदेव घीसा साहब का जीवन चरित्र—सन्त देव चैतन्यराय 'निर्वाण'
ग्रन्थ-सार (भाग-?)—स० स्वामी गंगादास
जीवन-गाथा—श्री धर्मवीर सिंह कौशिक
ज्ञान-अमृत—स्वामी आत्मप्रकाश
दिवगत हिन्दी सेवी—आचार्य क्षेमचन्द्र 'सुमन'
निर्गुण काव्य दर्शन—श्री सिद्धनाथ तिवारी
पचयज्ञ विधान—सन्त द्योतराम दास
परमार्थ का सार—सन्त कृपालसिंह
पिता पूत—श्री हरिश्चन्द्र चड्ढा
बीजक-सार सम्बन्ध—सन्त देव चैतन्यराय 'निर्वाण'
ारतवर्ष का सम्पूर्ण इतिहास—प्रो० श्रीनेत्र पाण्डेय
यराष्ट्र मानस—डॉ० कृष्णचन्द्र शर्मा 'चन्द्र'
रठ जनपद की साहित्यिक चेतना—आचार्य क्षेमचन्द्र 'सुमन'
ाधास्वामी मत—डॉ० अगमप्रसाद माथुर
ब्दवाणी विकास—सन्त द्योतरामदास
ीग्रन्थ साहेब—सन्त घीसा साहब, सन्त जीतादास
ो घीसा सन्तजी का जीवन-चरित्र—डॉ० नीलम रानी